ओ
प्र
• ओप्रतीक्षित •
क्षि
त

डा० शान्ति सुमन

की

चिर प्रतीक्षित नवगीत-कृति,
जिसके अप्रतिम गीत
प्रकाशन के पूर्व ही नयी पाढ़ी के
गलहार बन चुके थे।

●

कवि-सम्मेलन की परम्परा से अलग,
छायावादी ऊहापोह से भिन्न,
निरर्थक रोमान से दर किनार,—
आधुनिक नागरिकता के दैनिक यथार्थ से जुड़े
गहरे-गहरे, ताजे गीत

●

डिमाई १×८, १०४ पृष्ठ

मूल्य : ५)

प्रकाशक :

लहर प्रकाशन

२, मिन्टों रोड, इलाहाबाद—२

प्राप्ति स्थान :

बिहार बुक-डिपो

कल्याणी :: मुजफ्फरपुर

बोस प्रेस मुजफ्फरपुर।

दिशान्तर

सम्पादिका से प्रस्तुत :
रास्ता काटती हुई.....[क]

समीक्षक से प्रस्तुत नवगीतकार

प्रस्तोता : परमानन्द श्रीवास्तव १
नवगीतकार : देवेन्द्र कुमार : तीन रचकाएँ ४

प्रश्नोत्तर के विपर्त्त में

अनुपस्थित प्राश्निक और रचनाकार का उत्तर : डॉ० शंभुनाथ सिंह ४

नवगीत : दायित्व से संभावनातक

समवेत विचारक : लक्ष्मीकान्त सरस १३
: शान्ति सुमन १९
: प्रेमशंकर रघुवंशी २७
: नचिकेता २९
: उमाकान्त मालवीय ३५
: जगदीश विकल ३९

नवगीत : अशीर्षक और सशीर्षक

—राजेन्द्र प्रसाद सिंह ४१ —शंभुनाथ सिंह ४२
—ओम प्रभाकर ४३ —रमेश रंजक ४४
—शान्ति सुमन ४५ —भगवानस्वरूप सरस ४६
—रघुनाथ प्रसाद घोष ४७ —लक्ष्मीकान्त सरस ४८
—सुरेन्द्र कुमार काले ४९ —नचिकेता ५०
—कैलाश गौतम ५१ —जुगमंदिर तायल ५२
—प्रीतम सिंह बागरेचा ५३ —कृष्ण कमलेश ५४

एक कृति : दो विमर्श

'ओ प्रतीक्षित' : बिम्ब की पहचान : ओम प्रभाकर ५५
: एहसास की सच्चाई : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ५८

रास्ता काटती हुई···

कब तक, पता नहीं, नवगीतकार और अनभ्यस्त अलोचकयों नवगीत के आविष्कारक या पुरोधा या पहले यात्रिक की खोज करते रहेंगे ? यह जैसे दोमुँहा बहाना हो चला है,—नवगीत की सम्पदाओं की पहचान और मूल्यांकन की समस्याओं को टालने का और परख की असमर्थता को बाद देकर नवगीतकारों के बीच निरर्थक तनाव बढ़ाने का; यानी नवगीत-आन्दोलनों को कमजोर करते जाने का बहाना; जिससे अविलम्ब छुटकारे की कोई सूरत नजर नहीं आती। एक नवगीतकार की कल्पना करें, जिसने १९७० से लिखना आरम्भ किया। वह नवगीत की पहचान समझना चाहता है। शुभचिन्तकों और स्वयम्भू निर्देशकों ने उसे 'गीतांगिनी' ('५७), 'कविता' ('६४), पाँचजोड़ बाँसुरी ('६९) वगैरह अनेक संकलनों से लाद दिया और मित्रों ने 'सातवेंदशक के उभरते नवगीतकार', 'अंकन : नवगीत-अंक', 'अन्तराल : १, २, ३' थमाकर सारा बोझ उतार दिया। व्यावसायिक पत्रों के रंगीन मिजाज अध्येताओं ने 'धर्मयुग' और 'हिन्दुस्तान' या 'कादम्बिनी' या 'नवनीत' में छपे तथाकथित गीतों को 'छिपेरुस्तम नवगीत' कहकर वैसा ही लिख भेजने को पीठ ठोंकी·····और वह कागज-कलम लिये सिर थामकर बैठ गया कि किस पहचान को प्रतिमान बनाकर नवगीत लिखें; कहीं पूर्वागत गीत, अगीत या 'नयी कविता के गीत'—या फिर कवि सम्मेलन के पिछड़े हुए गीत न लिख जाए। उसके असमंजस का जवाब भरती के नकली नवगीत छापनेवालों के पास है या किन्हीं युवा पत्र-पत्रिकाओं के लेन-देनवादी सम्पादकों की तुकबन्दियों को नवगीत में शामिल करनेवालों के पास ? यह सही है कि उक्त असमंजस से उसे खुद ही निबटना पड़ेगा। 'नयी कविता' से प्राप्त काव्य-रुचि, साठोत्तर और युवा कविता से प्राप्त जुझारू कथ्य-शैली और चलचित्र या लोकगीतों से प्राप्त लय-संस्कार उसे जिस देहरी तक ढ़ोने पड़े है,—वहाँ लयात्मक रचना या नवगीत आधुनिकता के पीड़ातिरेक और दैनिक जीवन की अनभिव्यक्त संवेदनाओं से ही जन्म लेगा;

इस तथ्य से उसे स्वयं ही जुड़ना है। इस संभावना-भरे दृष्टि-विन्दु से भटकाकर उसे बुद्धिजीवियों और रचनाकारों की प्रान्तीयता, जातीयता, प्रतियोगिता और गुरुडम से बाँधकर घसीटनेवाले 'घुड़दौड़-छाप' अग्रणी नवगीत के भावी मजार तक क्यों ले जाना चाहते हैं ?

अब यह सोचना जरुरी है कि नवगीत-क्षेत्र में जिनकी रचना, सम्पादन योजना, संगठन-क्षमता और आलोचना कुछ समाँ बाँध चुकी है या जो संभावना, दावे और तुरुपचाल के आकर्षक नमूने पेश कर चुके हैं, वे भी नवगीत-सम्पदा की पहचान और मूल्यांकन की समस्या को टालते ही रहेंगे या कोई पहल भी करेंगे ? करना चाहे तो पहल किस तरह और किस पैमाने पर होगी ? ध्यातव्य है कि नयी कविता और आज की कविता में जैसे 'प्रामाणिक' (genuine) रचनाओं के साथ बड़ी संख्या में नकली या 'फेक' रचनाएँ भर गईं वैसे ही नवगीतों में 'प्रामाणिक' और नकली का घालमेल बहुत भ्रामक हो चला है। इस दिशा में काम आगे बढ़ाने वालों को छँटौती और कटौती से कुछ भी 'प्रामाणिक' रचनाकारों को नहीं, रचनाओं को रेखांकित करना अनिवार्य होगा, जिनके पाठालोचन, विश्लेषण और वर्गीकृत विशेषताओं के स्थिरीकरण से ही नवगीत की सही पहचान और सार्थकता स्थापित हो सकती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और विकास-क्रम के विवरण के साथ ही नवगीत की जीवन्त प्रवृत्तियों और शैलीक सम्पदाओं की खोज जबतक नहीं होगी,—तबतक टुच्चे आलोचक, दुरभिसन्धि करनेवाले सम्पादक और पूर्वागत काव्यान्दोलनों के हारे हुए सूत्रधार नवगीत की समस्या को बरगलाते ही रहेंगे।

आधुनिकता-बोध रचनाकार के लिए और विशेषत: नवगीतकार के लिए एक चौराहा है। इस चौराहे पर व्यावसायिकता, व्यवस्था और राजनीति नगर से गांव की ओर नगर-बोध लिये जाती है और परम्परा, गरीबी, कामचलाऊपन की विवशता और सत्ता पर अनास्था गाँव से नगर की ओर जन-प्रतिक्रिया लिये आती है। इस चौराहे पर खड़ा नवगीतकार दोनों के मिलन-विन्दु पर आम आदमी की आन्तरिक सहजता का प्रस्तोता

है। परिवेश और परिस्थितियों की टान से विचलित, नर्वस और आक्रोश भरा आम आदमी जिस आन्तरिक विराम पर रुककर जूझने की तैयारी करता है, वही अगर सहज नहीं हो सका तो तनाव का विचलन उसे कभी सबल नहीं होने देगा। इसीलिए नवगीतकार उसे आन्तरिक सहजता के घेरे में लाकर वैयक्तिक, पारिवारिक, दिनचर्यागत, पारिवेशिक और अन्ततः सामूहिक अस्तित्व की भीतरी और बाहरी जीवन्तता का लयात्मक बोध सौंप देता है और स्वयं भी उसी से अनुप्राणित होता है। वैचारिक खंडाशयों के विपरीत समग्रबोध से जुड़ने की स्थिति सहजता ही है।

'अन्यथा' का समायोजन यों ही नहीं हुआ। संकल्प है कि जबतक 'अन्यथा' जीवित रहेगी, उस धड़ल्ले का रास्ता काटती ही रहेगी जो आसपास सेदूर-सुदूर तक के नवगीतकारों को रचनात्मक प्रामाणिकता के अभाव में भी दबाव और उछाल की चालबाजी और चापलूसी का शिकार बना रहा है। ऐतिहासिक श्रेय की ख़रीद-फरोख्त और परमुखापेक्षी प्रवृत्तियों ने जो आँखों में धूल झोंकने का सिलसिला चला रखा है, उसका पर्दाफाश कर, रचनाओं में घटित प्रामाणिकता को आमने-सामने उजागर करना 'अन्यथा' का अनुष्ठान है। नवगीतकारों में साथ देनेवाले सहयोगियों की कमी नहीं है मगर रचनात्मक धरातल पर, दृष्टिकोण की दिशा में और भ्रामक पोशीदगी को उघारने की ओर जिनका सहयोग और एका चाहिए,—उनके लिए 'अन्यथा' चुनौतियों का मंच प्रस्तुत करेगी। इसे आप यदि फिर खोखला बड़बोलापन न समझ लें, तो सच्ची तत्परता के साथ प्रस्तुत है——

यह प्रवेशांक !

□ सम्पादिका ।

विडम्बना तुक या अर्थ की

[देवेन्द्र कुमार के गीतों की
बनावट के सम्बन्ध में कुछ बातें]

□ परमानन्द श्रीवास्तव

देवेन्द्र कुमार के गीतों के लिए कोई टिप्पणी अलग से आवश्यक क्यों होनी चाहिए ! यह सही है कि गीत के नाम पर कुछ रूढ़ तुकों, सिर्फ रूमानी, हल्की-हल्की और गुनगुनी प्रतीतियों की खोज करने वाले पाठकों को ये गीत अटपटे लगेंगे क्योंकि देवेन्द्र कुमार मूलतः गीतकार होते हुए भी, युवा संवेदना के जागरूक चार-पाँच महत्वपूर्ण कवियों में भी हैं और लगातार आज के सवालों से, आदमी की सच्ची और कभी-कभी विडम्बनापूर्ण जिन्दगी से उलझते रहे हैं और कविता के को यथासम्भव तोड़ने में भी कविता की सार्थकता मानते रहे हैं। इसलिए गीत के ढ़ाँचे में भी उसकी अपनी शर्तों पर भी सही, थोड़ी उलट फेर तो वे करते ही हैं। शब्दों का सीधा सरल अनायास और लचीला विन्यास कब एक विडम्बनापूर्ण मुद्रा अख्तियार कर लेगा, नहीं कहा जा सकता। इन गीतों में एक रूमानी प्रतीति के सम्बन्ध के विरोध में असली जिन्दगी का गद्य एक अलग ही अर्थ और अभिप्राय की सृष्टि करता है। जहाँ अस्पष्टता है वहाँ अस्पष्टता का, सच पूछिये तो भ्रम है क्योंकि वह कुहरे का जो अहसास दे पाता है वही अभीष्ट है—एक कवि का अभीष्ट—कवि की दुनिया में रंग क्या सिर्फ रंग होते हैं, जंगल क्या सिर्फ जंगल होता है (क्या वह आदमी के भीतर ही नहीं हो सकता !)। कुहरे के अन्दर हैं कुहरे/लाल और पीले, नीले, हरे/आधी बस्ती, आधा जंगल/इसमें क्या आज, क्या अभी, कल/चेहरे के अन्दर हैं चेहरे। जहाँ आप रुकते हैं वहीं आपकी जानी-पहचानी व्यंग्यात्मक, पर अपनी ही जिन्दगी का सच है—चेहरे के अन्दर चेहरा। वहीं न रह जायँ तो आगे प्रकृति है—गीतों ने आदमी और प्रकृति की संवेदनाओं में कोई रिस्ता आज तक बनाये रखा है—धूप में हवाओं के खाते/पानी के होठ थरथराते/कमरे के अन्दर हैं, कमरे। 'अनबँटे इरादों के पर्चे' अगर हर तरह से सम्भव भी हो गये तो असलियत में फर्क कहाँ आया—'आफत में जान फँसी गहरे।'

शिल्प की इस बनावट को देखें तो हर पल फिसलने का खतरा है क्योंकि 'पर्चे' को 'अगर्चे' का तुक मिलना ही है। आखिर यह गीत की लाचारी है पर लगातार तुकों में अर्थ का रिश्ता बनाये रखना गीत की जरूरत है। देवेन्द्र कुमार इस जरूरत से सचेत और लाचारी से चौकन्ने हैं।

दूसरे गीत में 'दरवाजे, दरवाजे चौखट/ओरी-ओरी लगी मुहब्बत' पंक्तियों के बाद ही असली जिन्दगी से सामना है। ध्यान रहे कि गीत का शीर्षक मुहब्बत है। सामना इस तरह है—'उतरे खपरैलों के जोड़े हाँफ रहे माटी के घोड़े/पांच सात बच्चा·····दो औरत'। आदमी को अपने अलगाव की नहीं, लगाव की पीड़ा है—जहाँ अपने आंगन घर 'आँखों के अलसर' होकर रह गये हैं। यह अहसास लगाव का ही है, विरक्ति का नहीं क्योंकि 'लौट गये द्वार से/तथागत'। हर शब्द की व्याख्या जरूरी नहीं—जरूरी है गीत की अनिवार्य संवेदना, वाह्य इकाई ही नहीं, निजीपन ! तुक की विडम्बना से शुरू होने वाला तीसरा गीत अर्थ की विडम्बना के साथ समाप्त होता है। जी का अनमना होना—यही तो अहसास है जिसके साथ गीत की शुरूआत है—

कुछ न पूछो हाल इस जी का
आज दिन तृन तोड़ते बीता

(तृण को तृन कहा जा रहा है, तिन नहीं - एक अभिजात स्वभाव 'तृन' को जिन्दगी के निकट लायेगा तो 'तिन' कर देगा—क्योंकि गंवई-गांव में 'तृन तोड़ना' ही मुहावरा है, इसकी उसे पहचान न होगी !) पर अनमना होकर भी कवि हर खुशी की उपमा फूल से देना गैरजरूरी समझता है क्योंकि वह पर्यायों की स्वीकृति से बँधा हुआ नहीं हैं। उसे तो विपर्ययों की भाषा की तलाश है—

दराजों में हाथ
बन्द
पड़े

इस तरह पंक्ति के टूटने का क्या कोई अर्थ है ! एक शब्द 'बन्द' या एक 'पड़े' जैसे शब्द से·····कितना अर्थ दिया जा सकता है। दूसरी पंक्ति अपनी विडम्बना से चौंका देगी—'मेज पर कुछ नींद के टुकड़े'। तीसरी पंक्ति में एक अकारण सम्बोधन 'रीता' की क्या अर्थवत्ता है ! पाठक के लिए, बराबर सोचते रहने के ये कुछ सवाल हैं—गीत असली जिन्दगी से सामना कराकर खत्म हो जायेगा, सवाल खत्म न होंगे—'समाचारों के/लिए/कहना/और अपने से छिपे रहना/रोज की यह जिन्दगी भी क्या !'

□

तीन नवगीत

□ देवेन्द्र कुमार

एक : भूल का पर्याय

कुछ न पूछो हाल इस जी का
आज दिन तृन तोड़ते बीता !
हर खुशी के साथ
कोई
फूल
भूल का पर्याय केवल भूल
बस यही, हमने नहीं सीखा !
दराजों में हाथ
बन्द
पड़े
मेज पर कुछ नींद के टुकड़े
समझ में आया तुम्हे रीता ?
समाचारों के
लिए
कहना
और अपने से छिपे रहना
रोज की यह जिन्दगी भी क्या ?

□

दो : मुहब्बत

दरवाजे, दरवाजे चौखट
ओरी-ओरी लगी मुहब्बत।
उतरे खपरैलों के जोड़े
हाँफ रहे माटी के घोड़े
पाँच-सात बच्चे
·····दो औरत।
अपने ही आंगन, अपने घर
हुए कहीं आँखों के अलसर
लौट गये द्वार से
तथागत।
रात की गुफा से दिन पिछले
हाथी के दांतों से निकले
सुग्गे के ठोर बँधा
स्वागत।

□

तीन : कुहरे

कुहरे के अन्दर हैं कुहरे
लाल और पीले, नीले हरे।
आधी बस्ती, आधा जंगल
इसमें क्या आज, क्या अभी, कल
चेहरे के अन्दर हैं चेहरे।
धूप में हवाओं के खाते
पानी के होठ थरथराते
कमरे के अन्दर हैं, कमरे।
अनबँटे इरादों के पर्चे
हर सम्भव बन गये अगर्चे
आफत में जान फँसी गहरे।

□

नवगीत : कुछ प्रश्नोत्तर

□ डा० शंभुनाथ सिंह

प्रश्न १— नवगीत क्या है ? गहरे सौन्दर्यबोध को लेकर खासकर नयी कविता की पूरक स्थिति में जन्मा है या मात्र चौंकाने की दृष्टि से उभरा हुआ नारा, फतवा या संगठन है ?

उत्तर— सौंदर्यबोध की गहराई नयी कविता और नवगीत दोनों में समान रूप में वर्त्तमान है। छायावादी सौंदर्यबोध अध्यात्मपरक और कल्पनाजीवी था किन्तु नवगीत और नयी कविता का सौंदर्यबोध यथार्थ जीवन की गहराई में जाकर मानवीय चेतना के अनुद्घाटित स्तरों को उद्घाटित करता है। वह कल्पनालोक का वायवी सौंदर्यबोध नहीं और न रीतिकालीन काव्य का स्थूल शारीरिक सौंदर्यबोध है। इसके विपरीत वह मानवीय सम्बन्धों के बीच निरन्तर परिवर्तित होता हुआ गतिमान जीवन-चित्र है। वस्तुतः नयी कविता और नवगीत के कवियों की जगत को देखने की दृष्टि पूर्ववर्ती कवियों से पूर्णतया भिन्न है। इससे छायावादी कविता और नवगीत के सौंदर्यबोधगत आयामों और स्तरों में बहुत अधिक अंतर है।

इस कथन में सत्य का अंश है कि नवगीत नयी कविता का पूरक है। वह नयी कविता होते हुए भी उससे भिन्न प्रतीत होता है क्योंकि नयी कविता के लिए मुक्त छंद की परिपाटी रूढ़ हो गई है। कथ्य और शिल्प-सम्बन्धी कुछ विशेष पद्धतियाँ भी नई कविता में रूढ़ियों का रूप धारण करती जा रही हैं, किन्तु नवगीत में अभी शिल्पगत रूढ़ियाँ नहीं बन पायी हैं; इस कारण उसमें नयी कविता की अपेक्षा अधिक ताजगी और नयापन है। इस दृष्टि से नवगीत नयी कविता का वह पक्ष है जो उसे निरन्तर नयापन और ताजगी देता रहेगा। प्रयोगवाद में चौंकाने की प्रवृत्ति अधिक थी। प्रगतिवादी में नारे-फतवे और संगठन अधिक महत्व के थे। किन्तु नयी कविता और नवगीत दोनों में ये प्रवृत्तियां समाप्त हो गयीं।

प्रश्न २—क्या नवगीत मूलतः भारतीय है, या उस पर कोई विदेशी प्रभाव है ? कृपया, नवगीत के सौंदर्यशास्त्र पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— नवगीत और नयी कविता दोनों ही विश्वकाव्य के उस धरातल पर स्थित हैं जहाँ राष्ट्रों और जातियों की सीमा मिट गयी है। नवगीत में विश्वजनीन तत्त्वों के साथ भारतीय तत्त्व भी पर्याप्त मात्रा में वर्त्तमान हैं। कम से कम छन्द और लय की दृष्टि से तो वह पूर्ण भारतीय है। वर्त्तमान युग में संसार के समस्त देशों के मानवों की स्थिति प्रायः एक सी है। मानवीय संकट-बोध, जीवन के परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था, सामाजिक संघर्ष और दहशतभरा अंधकार सभी देशों की कविता में समान रूप से व्यक्त हो रहा है। अतः नवगीत में इन तत्त्वों का होना किसी विदेशी प्रभाव का सूचक नहीं माना जा सकता।

नवगीत का कोई अपना अलग सौंदर्यशास्त्र नहीं है। सौंदर्य का प्रतिमान प्रत्येक युग में बदलता रहता है। प्रत्येक युग अपने लिए नये सिरे से अपने सौंदर्यशास्त्र का निर्माण करता है। नवगीत या नयी कविता का सौंदर्यबोध पूर्वयुगों के आध्यात्मिक और स्थूल शारीरिक सौंदर्यानुभूति को छोड़ कर जीवन की हलचलों और विसंगतियों के बीच निर्मित होता हुआ सौंदर्यबोध है जिसमें गहरी मानवीय अनुभूतियों का जीवन्त प्रकाश वर्त्तमान है। उसमें छायावादयुगीन रोमानी और लिजलिजी सौंदर्यानुभूति नहीं है। वह परुष और खुरदुरे सौन्दर्य की ओर अधिक उन्मुख है। मशीनों की गड़गड़ाहट, युद्धों की विभीषिका, महानगरों की भीड़ की दहशत, निराश और निरुद्देश्य जीवन-यात्रा में निरन्तर चलते हुए टूटे व्यक्तियों की मानसिक विक्षिप्तता, ये सब इस नवीन सौंदर्यबोध के अनिवार्य अंग बन गये हैं।

प्रश्न ३—व्यक्ति की खोज शायद नवगीत का मूल स्वर है, कृपया, स्पष्ट कीजिए कि वह किन संदर्भों में तथा कितने आयामों में व्यक्ति की खोज कर चुका है या कर रहा है ? क्या नवगीतकार व्यक्तिवाद की पुनरस्थापना चाहता है ? दूसरे शब्दों में नवगीतकार के अहम् की क्या स्थिति है ?

उत्तर— व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व की खोज नवगीत और नयी कविता का मूल स्वर है। आज का समाज भीड़ बन गया है जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व लुप्त हो गया है। उसी व्यक्तित्व को उपलब्ध करना आज के प्रबुद्ध मानव का अन्तिम उद्देश्य है। भारत की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, महानगरों का विस्तार, शासन की अनिश्चित आर्थिक नीति और समाजवाद के कोरे नारों से उत्पन्न सब कुछ को अस्वीकारने की मनोवृत्ति आदि के कारण भारतीय बुद्धिजीवी बहुत कुछ अनास्थावादी और मूल्यहीनतावादी होता जा रहा है। इन सभी मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति नयी कविता और नवगीत में समान रूप से हो रही है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नयी कविता और नवगीत का अन्तिम लक्ष्य अनास्था और मूल्यहीनता है। नई कविता और नवगीत का कवि आज की भयानक स्थितियों के भीतर प्रविष्ट होकर ऐसे मानव की मूर्ति निर्मित करना चाहता है जिसमें व्यक्ति और समाज की इकाइयां अलग-अलग होंगी। वह व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व की खोज कर रहा है। नवगीत में अहम्वाद के लिये कोई स्थान नहीं है। आज का संसार जिस विन्दु पर पहुंच गया है, वहां व्यक्ति का अहम्वाद निरर्थक हो गया है। वस्तुतः अहम्वाद पिछले पूंजीवादी समाज के बीच ही पनप सकता था। आज तो सारे संसार में पूंजीवाद लड़खड़ाती स्थिति में है। समाजवाद की बढ़ती लहर में कोई भी कवि-लेखक अहम्वादी होकर रचना नहीं कर सकता। अहम्वाद व्यक्तिवाद की अन्तिम परिणति है। नवगीत वैयक्तिक धरातल पर स्थित हुआ भी व्यक्तिवादी की अहंवादी प्रवृत्तियों का पोषक नहीं है। वह व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक समस्याओं के प्रभाव को अभिव्यक्त करता और मानवीय सुख-दुःख का बिम्बात्मक अंकन करता है।

व्यक्तित्व की खोज नवगीतों में अनेक रूपों में होती दिखाई पड़ती है। नवगीतकार अपने 'मैं' को अभिव्यक्त करने का अधिकार सुरक्षित रखना चाहता है। उसका 'मैं' 'हम' का प्रतिनिधित्व करता है। वह सामाजिक न्याय के लिए तड़पता

और मानव की अन्धकारपूर्ण नियति को चुनौती देता है। वह रोशनी फैलाने के लिए अन्धकार को पीता, सुन्दर को सार्वभौम बनाने के लिए असुन्दर का आलिंगन करता तथा सत् के आवेष्टन को खोलने के लिए असत् की धज्जियां उड़ाता है। मानवीय संकटबोध के विविध आयामों की प्रत्यक्षीकृत अभिव्यंजना नवगीत की ऐसी उपलब्धि है जो उसे आधुनिक भावबोध से जोड़ती है। इस अभिव्यंजना के आयामों में एकांगिता नहीं, विविधता है। इसी खोज के दौरान नवगीतकार कभी नगरों की भीड़ में घुसता और कभी जंगलों पहाड़ों के चक्कर काटता, कभी मानव मन की गहराइयों में उतरता, कभी प्रकृति के रम्य रूपों और ग्रामीण जीवन की सहजता पर रीझता और कभी औद्योगिक सभ्यता के अन्धकार में डूबता-उतरता दिखाई पड़ता है। इतनी वैविध्यपूर्ण भावाभिव्यंजना और चित्रांकण इसके पूर्व किसी युग के गीति-काव्य में नहीं मिलता।

प्रश्न ४— अधिकांशतः लगता है कि नवगीत इतना सूक्ष्मतर हो गया है कि उसकी व्यक्ति की खोज वाह्यरूप में बदल गयी है। क्या आप के मत से ऐसा है ?

उत्तर— नवगीत और नयी कविता दोनों में अभिव्यंजना की सूक्ष्मता अधिक है। इसका कारण यह कि इन कविताओं के कवि व्यक्तित्व की खोज और आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया में ही मानव की अभीप्सित मूर्ति गढ़ते हैं। वे, जो हैं उतने से ही सन्तुष्ट न रह कर अपनी सर्जनात्मक शक्ति द्वारा मनुष्य के उस महत्वपूर्ण और विशिष्ट, व्यक्तित्व का प्रारूप (ब्लूप्रिण्ट) चित्रित करते हैं जो मानव के भीतर ही निहित है। इस विशिष्ट व्यक्तित्व की खोज की अनुभूतियां बहुत जटिल, अस्पष्ट और गहरी होती हैं। उनकी अभिव्यक्ति में अस्पष्टता का होना स्वाभविक है। अस्पष्टता का दूसरा कारण कालहीन अमूर्त सत्यों की अभिव्यक्ति का प्रयास भी है। सत्य का एक रूप स्थूल वस्तुनिष्ठ और कालबद्ध होता है, तथा दूसरा सूक्ष्म, अमूर्त और कालतीत। अमूर्त सत्य वह आत्म सत्य हैं जो वस्तुओं के स्थूल रूप के भीतर गहराई में किया रहता है और उसे उद्घाटित करने के लिए उन वस्तुओं को

तोड़ना अथवा उन्हें विरूपीकृत करना आवश्यक हो जाता है। अणु के समान वस्तुओं को खण्डित और विरूपीकृत करके ही उनके भीतर के सत्य को उद्घाटित किया जा सकता है। वस्तुओं का अरूप तथा कालहीन सत्य सदैव स्थूल जगत के साथ संश्लिष्ट रूप में रहता है। नवगीत और नयी कविता में अमूर्त सत्यों को प्रतीकों, विशिष्ट एवं खण्डित बिम्बों से व्यक्त किया जाता है। इन प्रतीकों, विश्लिश्ट या विश्रृंखलित बिम्बों, खण्डित बिम्बों और निजी संकेतों में जटिलता और अरूपता इसलिए दिखाई पड़ती है कि उन्हें बुद्धि के सहारे नहीं समझा जा सकता। भोक्ता (रसज्ञ) की प्रबुद्ध संवेदना ही उन्हें पकड़ सकती है। बौद्धिक भाषा जब अमूर्त सूक्ष्म सत्यों की अभिव्यंजना करने में अक्षम और गूंगी हो जाती है तब प्रतीकों और बिम्बों की सांकेतिक भाषा ही काम देती है। ये चित्र ऐसे होते हैं जिसमें तार्किक संगति या सम्बद्धता नहीं होती जिससे सामान्य बुद्धि विश्वासी और इस सांकेतिक भाषा से अनभिज्ञ लोगों के लिए ऐसी कविता का सूक्ष्म कथ्य दुरूह और अत्यधिक बौद्धिक प्रतीत होता है। इस दृष्टि से यह कहना सही नहीं है कि नवगीत में व्यक्तित्व की खोज वाष्प रूप में बदल कर उड़ गयी है अर्थात् उसमें कोई ठोस कथ्य नहीं है। सूक्ष्म कथ्य की तुलना वाष्प से नहीं की जा सकती।

प्रश्न ५.—आधुनिक जीवन की यांत्रिकता, महानागरिकता, संत्रासबोध, अनास्था, अजनबीपन, एकांकीबोध आदि मनःस्थितियों को नवगीत कहां तक अभिव्यक्त कर सका है? दूसरे शब्दों में नवगीतकार अपने अचेतन को कितनी अभिव्यक्ति दे पाया है?

उत्तर— इन सभी मनस्थितियों की अभिव्यक्ति नवगीत में उसी प्रकार हो रही है जैसे नयी कविता में। प्रारम्भिक नवगीतों में आंचलिक सौन्दर्य-चेतना की अभिव्यक्ति अधिक होती थी, पर उत्तरोत्तर उसमें आधुनिकता के उन पक्षों का बोध अधिक तीव्र होता गया जो महानगरों की औद्योगिक सभ्यता से सम्बद्ध है। भारत की साम्प्रतिक राजनीति और अर्थनीति ऐसी हो गयी है जिसमें ग्राम और नगर के बीच का भेद मिटता जा रहा है, सभी एक ही जुए में बँधे हैं, सभी को एक ही कांटा गड़ा है, एक दर्द

सबको सालता है। अमानवीकरण के इस दौर में नक्सली हिंसक, ग्रामों और नगरों में समान रूप से मूल्यहीनता का वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं। युद्ध और तूफान, महामारी और अकाल ग्राम और नगर का भेद नहीं करते। अतः आज का नवगीत जिस भावबोध को व्यक्त कर रहा है वह भीड़ की भगदड़ वाली दहशत, और उसमें छटपटाते प्रबुद्ध व्यक्ति की ऊब, निरर्थकताबोध और एकाकीपन-अजनबीपन का बोध है।

प्रश्न—६ नगगीत में बौद्धिक स्पर्श है, वह केवल रोमानी गिलगिलापन लिए हुए नहीं है। गीतकारों की इस मान्यता के प्रति अपना मत स्पष्ट करें।

उत्तर— नयी कविता पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसमें अत्यधिक बौद्धिकता आ गयी है। उसी तरह नवगीत को भी कुछ लोग गीत मानते ही नहीं क्योंकि उनके अनुसार उसमें रीति-काव्य के अनुरूप भावुकता और रोमानियत नहीं है। ऐसे लोग नवगीत को भी बौद्धिकता से बोझिल मानते हैं। पर जैसा पहले कहा जा चुका है, नवगीत नयी कविता की भांति उत्तरोत्तर अधिक अबौद्धिक होता जा रहा है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसमें पुराने छायावादी गीतों जैसा रोमानी लिजलिजापन बढ़ रहा है। नवगीत न तो भावुकतापूर्ण है न बौद्धिकतापूर्ण। उसमें भावुकता का बहिष्कार तो प्रारम्भ से ही होने लगा था, अब अबौद्धिकीकरण की प्रवृत्ति भी तेजी से बढ़ रही है। सूक्ष्म कथ्य और दुरूह प्रतीकों के कारण उसमें अस्पष्टता होती है उसी को कुछ लोग बौद्धिकता का स्पर्श कहते हैं जो केवल उनका भ्रम है।

प्रश्न—७ प्रेम और सौन्दर्य जैसे शाश्वत मूल्यों के प्रति नवगीतकार की क्या कोई विशेष उल्लेखनीय उपलब्धि या दृष्टि है? कृपया स्पष्ट करें।

उत्तर— जो लोग जीवन के नग्न यथार्थ से जूझ रहे हों, जिन्हें जीवन मिथ्या और अर्थहीन लगता हो, जो इस जगत् में अपने को अजनबी और अकेला महसूस कर रहे हैं वे प्रेम और सौन्दर्य को शाश्वत कैसे मान सकते हैं? प्रकृति और मानव का समस्त सौंदर्य अनुभव करने वालों की मनःस्थिति पर निर्भर करता है।

प्रेम और सौन्दर्य उसी प्रकार परिवर्त्तनशील और भ्रामक है जैसी संसार की अन्य सभी वस्तुएं। नवगीतों में इन्हें इसी दृष्टि से देखा गया है। जिस संसार में मानव अमानवीकृत होता जा रहा है उसमें प्रेम और सौन्दर्य को शाश्वत वे ही मानेंगे जो शुतुरमुर्ग धर्म का पालन करते हैं। यथार्थ की ओट से आंखें बन्द कर लेने पर प्रेम और सौन्दर्य का रूप अवश्य शाश्वत प्रतीत हो सकता है अन्यथा वे मन की सृष्टि के अतिरिक्त और क्या है? यह मनस्सृष्टि किन्हीं युगों में भले ही शाश्वत मूल्यों का स्रोत रही हो आज तो वह अपनी ही दृष्टि में अपने को हीन और अर्थहीन बना देने वाली बन गयी है।

प्रश्न—८ नवगीत प्रायः सामयिक सन्दर्भ से कट कर चला है, क्या उस पर छायावादी ऐतिहासिक पलायन का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता?

उत्तर— नवगीत पर पलायनवादी होने का आक्षेप वही कर सकते हैं जिन्होंने नवगीत को पढ़ा नहीं है। सामयिक सन्दर्भों से कटे हुए गीत या काव्य में निहित दृष्टिकोण भी यदि युगीन सन्दर्भों से उत्पन्न हुआ हो तो उसे नवगीत या नयी कविता कहा जा सकता है। छायावादी कल्पनाजीवी दृष्टिकोण नवगीत को जन्म नहीं दे सकता। अतः इस आरोप में कोई सच्चाई नहीं है। इसके विपरीत नवगीत का नव विशेषण मूलतः उसके सामयिक सन्दर्भों से जुड़े होने का ही बोधक है। नवगीत नयी कविता की भांति यथार्थ जीवन की भोगी हुई अनुभूतियों का काव्य है, अतः उसके सामयिक सन्दर्भों से कटे होने या पलायनवादी होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न—९ कृपया नवगीत की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालें।

उत्तर— नवगीत सामयिक सन्दर्भों से जुड़ा है और मानव के सर्जनात्मक व्यक्तित्व की तलाश को वाणी देता है, अतः वह स्पष्ट ही सामाजिक चेतना का काव्य है। वह मानव को अन्धकार में ले जाने वाली किसी अदृश्य शक्ति का विश्वास नहीं करता, न ही किसी अपौरुषेय आध्यात्मिक चेतना का सहारा ले कर चलना है।

इसके विपरीत वह मानव में निहित शक्ति और पौरुष में विश्वास करता हुआ नियति को ललकारता और साथ ही सामाजिक विसंगतियों की धज्जियां उड़ाता है। इस प्रकार वह उन अराजकतावादी असामाजिक तत्वों से सम्पृक्त नहीं है जो मूल्य-हीनता और व्यर्थता के बोध को ही काव्य का साध्य मान लेते हैं हैं और आधुनिकता के नाम पर सामाजिक जीवन की जड़ पर ही कुठाराघात करते हैं। इस अर्थ में वह अकविता, और भूखी पीढ़ी की कविता से नितान्त भिन्न है। उसकी सामाजिक चेतना नवीन जीवन मूल्यों की खोज और पहचान से गहराई तक सम्पृक्त है। मानव आज पिंजरे में बन्द पशु की भांति जैसे गरम सलाखों से दागा जा कर जिस यातना और यंत्रणा का अनुभव कर रहा है नवगीत में उसकी गहरी प्रतिक्रिया के संवेदनों को अभिव्यक्ति मिली है। सामाजिक विषयों का वैविध्य और भाषा का सामान्यीकरण नवगीत की सामाजिक चेतना का ही प्रमाण है।

प्रश्न—१० नवगीत में आधुनिकता की उपस्थिति पर, विशेष कर उसके ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए, आपके क्या विचार हैं?

उत्तर— आधुनिकता एक विशेष जीवन-दृष्टि है जो प्रायः समसामयिक सभ्यता और संस्कृति के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करती है। वह ऐसे चेतनाशील व्यक्तियों की जीवन-दृष्टि है जो अतीत, वर्त्तमान और भविष्य की विभाजक रेखाओं को मिटाकर मानव की नियति को हस्तामलकवत देखते हैं, अतीत की स्वस्थ परम्परा तथा युगबोध में उनके लिए कोई मौलिक अन्तर नहीं होता क्योंकि युगबोध परम्परा का खुलता हुआ नया पृष्ठ है और भविष्य परम्परा का वह भाग है जो अभी खुलने को बाकी है। इस तरह अतीत की स्वस्थ परम्परा समसामयिक युगबोध और भविष्य की सार्थक दृष्टि की संश्लिष्ट चेतना का ही नाम आधुनिकता बोध है। युग की वैज्ञानिक, राजनीतिक और सामाजिक चिन्ता धारा में परम्परा के अनस्युत तारों को पकड़ कर अपने व्यक्तित्व को 'कालहीनकाल' में पुनः उपलब्ध और अभिव्यक्त करने वाला ही वास्तविक आधुनिकतावादी व्यक्ति होता है। अन्य लोग, जो

केवल समकालीन होते हैं अर्थात् केवल अपने काल में, स्थूल-वर्तमान में, जीते हैं, आधुनिकता के अनुकरता भाग होते हैं। इस प्रकार आधुनिकता एक सतत् विकासमान जीवन दृष्टि है। वह क्षण-क्षण अपने को पुनरूज्जीवित और नवीनीकृत करती चलती है। इस तरह आधुनिकता भी युगानुरूप परिवर्त्तित होती रहती है, किन्तु उसका सम्बन्ध परम्परा से अवश्य जुड़ा रहता है हमारी साम्प्रतिक आधुनिकता भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के उस विन्दु पर पहुंची है जहां भारतीयता विश्वजनीनता में घुलती दिखाई पड़ रही है। हम आज भारतीय परिप्रेक्ष्य में तथा विश्व-मानव के परिप्रेक्ष्य में जिस जीवन-दृष्टि से प्रभावित और प्रेरित हो कर अग्रसर हो रहे हैं वहीं हमारी आज की आधुनिकता है। नवगीत में इसी आधुनिकता की अभिव्यक्ति हुई है। गनीमत है कि उसमें अधकचरे और अपरिपक्व मन की वे कृत्रिम प्रवृत्तियां नहीं घुस पायी है जिन्हें आधुनिक बोध के नाम पर खोटे सिक्के की तरह चालू कर दिया गया है। अश्लीलता, नग्नता, आत्मपीड़न (सैडिज्म) मूर्तिभंजकता, मूल्यहीनता आदि की प्रति-क्रियावादी प्रवृतियां आधुनिकता नहीं आधुनिकता के नकली सिक्कों जैसी है। नवगीत में उनकी अभिव्यक्ति नहीं हुई है।

★

नवगीत का मानक प्रकाशन

ओ प्रतीक्षित

(हम कभी-कभी ऐसी रंगहीन स्थितियों से गुजरते हैं जो हमारी नियति होती है। हम चाहकर भी उनसे पलायन नहीं कर सकते। हर क्षण हम आंतरिक दंश का अनुभव करते रहते हैं। हमारा मन प्रश्नों और संदेहों के बीच उबलता रहता है।]

प्रकाशक :

लहर प्रकाशन

७, मिन्टो रोड, इलाहाबाद-२

सम्पर्क :

बिहार बुक डिपो, कल्याणी, मुजफ्फरपुर [बिहार]

नवगीत : भविष्य दिशाबोध और दायित्व

❀ लक्ष्मीकान्त सरस

❀ धूप चौपाई और दोहों में कैद की जा रही है तो रात हिन्दी गजल में, नवगीत का इन दिनों जो माहौल है उसमें यही कुछ प्रायः देखने और पढ़ने को मिल रहा है। नया और नएपन का भूत दोहों, चौपाई और हिन्दी गजल का रूप धारण कर नवगीत के साथ वैताल पच्चीसी का खेल खेल रहा है और बड़े ठाठ से गीत ही लिखने की घोषणा करने वाले लोग अपनी बिरादरी के नव सिखुए समीक्षकों से आत्महत्या के विरुद्ध का संघर्ष छिड़वा-कर नेतागीरी का जामा पहन रहे हैं। शब्दों का गठन और नई भाषा की तलाश करते-करते कुछ साजिशदां समीक्षकों ने साफ बातें न कहकर, भ्रामक प्लेटफार्म का निर्माण किया है। आदमी जिस चीज को भोगता है, परखता है और जीता है, उस चीज का इजहार और बारीकी का विस्तार अपने तरीके से करता है। लेकिन साहित्य में हमेशा बात पकड़ की होती है। अगर ऐसी बात नहीं होती तो अज्ञेय नयी कविता के मुखिया करार नहीं दिए जाते। जिस प्रकार नई कविता के इमेज को अज्ञेय ने परखा और अपने ढंग से प्रस्तुत करने की योजना बनाकर उसकी प्रतिष्ठापनाओं का खाका स्थापित किया ठीक उसी तरह गीत के नएपन को महसूस कर भोगकर राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने १९५८ में प्रकाशित "गीतांगिनी" में गीत को नवगीत की प्रखरता से जोड़ कर रचना संयोग की अधिकृत स्थापनाओं के साथ प्रकाशित किया। नवगीत से पहले नयागीत पर कुछ सोचने की मेहरवानी साहित्य के कुछ सिद्धहस्त आलोचकों ने १९५५-५६ के प्रथम अधिवेशन में जरूर की।

❀ इन तमाम बातों को नकार कर बिहार के किसी छोलकट समीक्षक ने डॉ० शिव प्रसाद सिंह की १९६० में वासन्ती में प्रकाशित एक टिप्पणी का हवाला देते हुए "नवगीत का आन्दोलन वासन्ती द्वारा छेड़ा गया" जैसे मत को (लेखक का मत) स्वीकारा है। १९५८ और १९६० में समीक्षक को अन्तर नहीं दिखाई देता समय का। आन्दोलन का स्वरूप पता नहीं समीक्षक की दृष्टि में क्या है। जिन्होंने वासन्ती का वह अंक पढ़ा होगा सहज ही इस पूर्वाग्रही समीक्षक की बुद्धि का अन्दाज लगाया होगा। 'रश्मि' या 'अंकन' में प्रकाशित लेखों को पढ़कर और नकल कर के अपने मन से जोड़ते हुए कुछ भी लिख देने को तथ्यात्मक लेख समझने वाले पाठक या नवगीतकार की बौद्धिक विमूढ़ता ही कही जायगी। कोई भी आलोचक पूर्वाग्रही या आग्रही

होकर किसी पहलू पर जब विचार करता है तब वह आलोचक कम आदमी ज्यादा होता है।

❀ तलाशने और तराशने का जहां तक सवाल है वहां तक इन बातों को स्वीकारा जा सकता है कि बिखराव इधर बीच के नवगीतों में अधिक है जब कि इसका उल्टा होना चाहिए था। इसका एक मात्र कारण व्यवस्था के प्रति जिहाद बोलने वाले रचनाकारों में ईमानदारी का अभाव हो सकता है। फिर भी इसका मतलब यह कतई नहीं कि सन् साठ के बाद के दशक में नवगीत को लेकर कुछ ठोस सामने आया ही नहीं। "नवगीत साँचों में ढला हुआ गीत है, नए रूपों में तराशा हुआ, इसमें औद्योगिक, यांत्रिक, मशीनी और वैज्ञानिक सभ्यता का गुंजार है" (पाण्डेय रविभूषण प्रसाद अंतराल २, १९७२) अगर इस आधार पर बड़भैया के समर्थक पाण्डेय रविभूषण प्रसाद ने नवगीत की समीक्षा और कितनी हार, कितनी जीत का फैसला किया है तो आधुनिकता और आधुनिक शब्दों का आग्रही इस मशालची और नकलची आलोचक की बुद्धि के दिवालिएपन की घोषणा अंतराल में प्रकाशित उनके लेख के सारे के सारे उद्धरण करते हैं।

❀ "पूरा हिन्दी साहित्य ऐसे कितने चक्रव्यूहों से भरा हुआ है। इसका सबसे बुरा परिणाम यह हुआ है कि एक दल द्वारा जिन कुछ नामों का उच्चारण होने लगा बाद में चाहे इधर से उधर हो जाए उनमें नए नाम स्वीकृत नहीं हो सकते। सारे क्षेत्र में अराजकता फैली हुई है और नए नाम और नये नाम पर न जाने कितने तमाशे खड़े किये जा रहे हैं। (ये नये गीत ठाकुर प्रसाद सिंह : पांच जोड़ बांसुरी)। बिहार से ही नवगीत की बात पहले पहल निखर कर सामने प्रकाश में आई और वहीं से आज स्वीकृत और अस्वीकृत नामों को लेकर रविभूषण प्रसाद जैसे आलोचक मेंसस के समय योनि से निकले हुए खून को चाटकर, निरा आधुनिक आलोचक बनकर नवगीत और नवगीतकारों की हार जीत का फैसला कर रहे हैं—इनको लक्ष्मीकान्त सरस, रघुनाथ प्रसाद घोष, रामरतन नीरव, शान्ति सुमन, मधुसूदन साहा, मुनीश मंदिर, भागवत प्रसाद, प्रेमशंकर रघुवंशी, शीरीन भारती, भरत प्रसाद सागर, कृष्ण कमलेश आदि रोमैंटिक ज्यादा नवगीतकार कम क्या लगते ही नहीं। नवगीत की समग्रता पर बात करना छोड़कर केवल एकपक्षीय बात करना समीक्षात्मक विमूढ़ता की बात नहीं तो और क्या है। शायद बड़ भैयों की जांघों पर बैठ लवण्डेपन से ओत प्रोत यह

आलोचक यह भूल गया कि पूर्वाग्रह आलोचना और आलोचक दोनों को शरीर के होल का मवाद बना देता है।

❀ इस आदमी को भावानुसार शब्द—"हल्दी के रूप भरे/सूने दालान (सोम ठाकुर) के स्वीकार हैं लेकिन" शब्द के कंगन खनकते हैं" (लक्ष्मीकान्त सरस) का कंगन शब्द इसे रोमांटिक लगता है। खैर हारजीत का फैसला ऐसे मशालची आलोचकों से नहीं हो सकता मुझे मालूम है। नवगीत के नेता मणिमधुकर हैं या शलभ श्रीराम सिंह, या ठाकुर प्रसाद सिंह अथवा राजेन्द्र प्रसाद सिंह इसका फैसला नवगीत के ऐतिहासिक दस्तावेज ही करेंगे। ये मशालची आलोचक या समीक्षक जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि" नयेगीतों (नवगीत पर भी यही बात लागू होती है : सरस) का सबसे बड़ा बल उनके स्वतः स्फूर्त होने में ही है। इस गुण के लिए उसे प्रेरणा के आदिम स्रोत खोजने होंगे। आकस्मिकता के आयाम जीवन में कम हैं कि उनके बल पर कविता को निरन्तर नवीन बनाए रखना बहुत ही मुश्किल है। (ये नये गीत : वही) नयापन या आधुनिकता के दावेदार नवगीतकार या आलोचक अगर यह सोचते हैं कि प्रेरणा, भावना और आदिम स्रोतों के वर्तमान सत्य से कटकर कोई नवगीतकार नवगीत लिखता है तो यह बात गलत है। आज का परिवेश ही कुछ ऐसा है कि कोई गीतकार एक शताब्दी पीछे की जमीन पर खड़ा होकर पीछे जैसा कुछ लिखना पसन्द ही नहीं कर सकता। पसन्द न करना उसके परिवेश की बात है जो स्वाभाविक है। ऐसे में उभरते हुए नवगीतकारों पर रोमैंटिक होने का इल्जाम लगाना, अबाबील के बच्चों की तरह हरकतें करना है। आधुनिकता को मैं ओढ़ा हुआ लबादा नहीं मानता। पारम्परिक विकास ही आधुनिकता के धरातल होते हैं। आधुनिकता के इस विकास क्रम को स्थापित या अस्थापित नवगीतकारों या अन्य अन्य विधा के रचनाकारों ने स्वीकारा है। जो नहीं स्वीकारते वे या तो भ्रमित दिशा के राही है या नासमझ !

❀ नवगीत के विकास क्रम में निराला के अंतिम गीतों से लेकर, बंसी और मादल तक की गीत यात्रा और फिर ओम प्रभाकर द्वारा सम्पादित कविता का समवेत संकलन से होती हुयी नवगीत की यात्राएं सातवें दशक के उभरते नवगीतकार (खण्ड १ + २ सं० लक्ष्मीकान्त सरस) 'याद के मस्तूल' (मुनीश मंदिर) 'पांच जोड़ बांसुरी' (सं० चन्द्रदेव सिंह) 'भीतरी सतहों पर' (रामरतन नीरव) (ओ प्रतीक्षित) (शान्ति सुमन) आदि ढेर नवगीत संग्रह

नवगीत के विकास क्रम यात्रा को स्थिरता की जमीन से जोड़ते हैं। तमाम सम्भावनाओं और विडम्बनाओं को देखते हुए मैं इस बात को आज भी स्वीकार करता हूँ कि नवगीत कभी भी किसी आन्दोलन का मुखापेक्षी नहीं रहा न आज है। कुछ गोष्ठियों एवं लेखों के प्रकाशित हो जाने मात्र को आन्दोलन कहकर सम्बोधित करने या मानने वाले आलोचकों या समीक्षकों को आन्दोलन की परिभाषा गति का शायद पता नहीं। पांडेय रविभूषण प्रसाद को शान्ति सुमन के नवगीतों में पिया और टिकुली के सिवा कुछ नहीं दिखता—जबकि शांति सुमन का नवगीत संग्रह ओ प्रतीक्षित में—**'साथ साथ चला किए समय और हम'' या फिर "कास के सफेद फूल आमों की बौर। बँधे हुए आंचल में फसलों की डोर। क्षमा कैसे बाँधू ?** ऐसे अनेक नवगीत हैं जो नवगीत के मानदण्डों पर खरे उतरते हैं। पिछला दशक, "आधुनिकता की गति", भाषा की तलाश" बिखराव की समस्याएं आदि से घिरा हुआ बीत गया। यह दशक जब चिन्तन के निखरे हुए रूपों को लेकर सामने आया है और रचनात्मकता को बल प्रदान किया है, तब एक बार फिर बिखराव का तमाशा दिखाने के लिए बिहार के कुछ आलोचक, पीढ़ीवरदार मठुवों की संतान दूसरों को गुलशन नन्दा के संगे सम्बन्धी कह खुद सरस्वती बाई से "हम ही नहीं हर मां बहने रण्डी हैं" छापने तथा कुमारी चन्द्रफूला, तारा बाई और कथित वेश्याओं के तीन दलालों से "बात चीत" करने की योजना बनाकर कलकत्ता का नक्शा तैयार कर रही हैं।

❀ यह एक शुभ बात है कि बड़ भैये नवगीतकारों के नेता का चुनाव और हार-जीत का फैसला उपयुक्त संतानों की गणना का एक आलोचक ने किया है ! बड़ भैये जिनका आज हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामोल्लेख हो गया है खुश भले ही हो लें उनसे लेकिन इस बात को गांठ बांध लें कि अगर इसी तरह के गलत फैसले होते रहे तो आने वाली पीढ़ी उन्हें जीने नहीं देगी। पिछले दो दशकों में समस्याओं का अम्बार बौद्धिक और अबौद्धिक लोगों के इर्द गर्द लगा रहा है। आज भी समस्याएं इन दोनों श्रेणियों के प्राणियों के सामने का नहीं। बौद्धिकता की जमीन पर जहां तक कठोर समस्याओं से टकराने की बौद्धिक क्षमता की बात है वहां तक अपनी बौद्धिक क्षमता के साथ सभी नवगीतकारों ने समस्याओं से टक्कर लिया है उन्हें जीया है और भोगा भी है। ऐसी स्थिति में डॉ० शिव प्रसाद सिंह की यह भविष्यवाणी नवगीत और नवगीतकारों को लेकर करना कि "आज की कठोर समस्याओं से टकराने की बौद्धिक क्षमता वे नहीं रखते"। किसी अंधे

की भविष्यवाणी सी लगती है ! इन्हीं का एक प्रश्न और" "नवगीत से संकुचित भी कोई विधा हो सकती है ?" यह प्रश्न अगीत और अकविता आदि के लिए उपयुक्त हो सकता है, न कि नवगीत के लिए। नवगीत जीवित होने की मासूम विवशता नहीं, स्वतंत्र विधा है। जो गीत तत्व से प्रभावित जरूर है लेकिन नयी कविता से अलग है। यह एक भोगने की प्रक्रिया के साथ साथ अनुभूति एवं सत्य की प्रखरता और महसूसे गये क्षणों का वह चित्र है जिसमें सडाँध नहीं होती। नवगीत की "अनिवार्य स्थिति को सुदृढ़" करने में मासूम विवशता का उतना हाथ नहीं जितना कि पहचान और पकड़ का है।

❀ नवगीत आज भी विरोध की स्थिति से गुजर रहा है। पूरे हिन्दी साहित्य की गतिविधियों पर दृष्टिपात करने से यही बात उभरकर सामने आती है कि आज भी नयी कविता का एक वर्ग यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं कि गीत में युग बोध को प्रस्तुत किया जा सकता है। और दूसरा वर्ग नवगीत की बड़ाई तो करता है लेकिन स्वीकारने से इसलिए डरता है कि उसे पुराना न घोषित कर दिया जाए ! कुल मिलाकर नवगीत को अधिक से अधिक विरोध सहना पड़ा है फिर भी सब कुछ सहकर भी नवगीत को नवगीतकारों ने एक ऐसी जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां से इस विधा की संतुलित यात्रा आरम्भ होती है !

❀ बड़ भैये नवगीतकारों में ईमानदारी की तलाश एक अच्छी समीक्षात्मक पहल हो सकती है। शब्दों का आग्रही न बनकर अगर सही तरीके से विचार किया जाए तो। शब्द कभी भी अर्थ खोकर भी अर्थवान रहते हैं—शब्दों की विभाजन रेखा इस प्रकार नहीं खींची जा सकती कि अमुक शब्द नई कविता का है तो अमुक समकालीन कविता का शब्द किसी भी विधा या वाद विशेष की बपौती नहीं होते। जो लोग शब्द और राग का आग्रही बनकर "एक दिन को तरसता रहा उम्र भर" जैसे नवगीत को नौटंकीनुमा गीत मानते हैं वे अगर नौटंकी के नगाड़े की ताल आदि को सुने होंगे तो उन्हें पिछले तीन दशकों के अधिकांशतः नवगीत नौटंकी के गीत लगेगें जैसे—"पिया आया वसन्त फूल रस के भरे (गिरजा कुमार माथुर) रात पिया पिछवारे पहरू ठनका किया (केदारनाथ सिंह) निंदिया सतावे मोहे सँझही से सजनी (शमशेर बहादुर सिंह) टेर रही पिया तुम कहां (शम्भूनाथ सिंह) बदरिया झिमिर-झिमिर झिम बरसे (महेन्द्र शंकर) नाना रे बन्धु/अभी जाना रे

(ओम प्रभाकर) एक पेड़ चांदनी लगाया है आँगने (देवेन्द्र कुमार) तन धीरे हुआ कासवन (शान्ति सुमन) आदि गीत नवगीत, नौटंकी की धुन और ताल पर गाये जा सकते हैं। जिन्हें संदेह हो बिहार के रविभूषण प्रसाद से गवा कर देख लें।

❀ अर्थहीन शोर आजकल नवगीत को लेकर बढ़ रहा है ऐसी स्थिति में नवगीत के भविष्य पर कुछ कहना उचित नही जान पड़ता फिर भी नवगीत के विकास क्रम को देखते हुए ऐसी सम्भावना दीखती है कि जिस विधा का धीरे-धीरे विकास होता है उसका भविष्य भी प्राणवान होता है। नवगीत-कारों पर डॉ० शिव प्रसाद सिंह जैसे लोग दायित्वहीनता का आरोप लगाते रहे, लगाते रहेंगे। दायित्व किसी आलोचक द्वारा प्रस्तुत हथियार नही होता। दायित्व तो समस्याओं में नवगीत के साथ-साथ संतुलन बनाए हुए चलता है। नवगीत के प्रति संतुलन और समयानुरूप बरती गयी परिवेशित इमेज ही नवगीतकार का दायित्व है। नवगीत विधा यात्राओं के क्रम की विधा है। आन्दोलन खड़ा कर आगे बढ़ने वालों की साजिश आज भ्रामक हो सकती हैं लेकिन नवगीत के लिए यह बात भी शुभ होगी। इसमें संदेह नही!

❀ वर्तमान की निगाहों में बहुत कुछ तैर रहा है इस लिए नवगीत को वर्तमान और आनेवाले खतरों से वचना होगा इस क्रम में—

आने वाले। स्वागत!
जाने वाले। बिदा
अगले चौराहे पर इन्तजार ... ...
शुक्रिया।

[शलभ]

नवगीत में स्वागत, बिदा, इन्तजार और शुक्रिया सब कुछ है,। मशालची आलोचकों एवं समीक्षकों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

★

नवगीत : कविता के विकास-क्रम की एक अनिवार्य परिणति

शान्ति सुमन

विचार और अनुभूति—कविता की पृष्ठभूमि के दो स्तर होते हैं। अनुभूति के स्तर पर मनःस्थिति का निरूपण होता है जो लयात्मक और संश्लिष्ट होती है। अनुभूति की मनःस्थिति का लयात्मक सम्प्रेषण ही गीत है। वैचारिक कविता के घेरे में अर्थ की लय और गीत के घेरे में मनःस्थिति की लय व्यंजित होती है। यही दोनों में एक विशिष्ट अन्तर है।

गीत सापेक्ष रूप से एक स्वतंत्र विधा है और उसकी अनिवार्य परिणति है नवगीत। मैं इसकी परिभाषा दूँ—इससे अधिक अच्छा है कि नवगीत के संदर्भ में अपनी धारणाएँ व्यक्त करूँ। नवगीत अब प्रारम्भिक व्याख्या नहीं चाहता। यह तो मूल्यांकन के मध्याह्न से गुजर रहा है। पहले गीत को किसी न किसी रोमानी वस्तु की आवश्यकता होती थी। आज नवगीत को रोमान से परहेज नहीं भी हो तब भी उसके सामने रेगिस्तान सा फैला अपना वर्तमान है जिससे वह सीधे जूझता है। वर्तमान उसके लिये संघर्ष का पर्याय है। छायावाद शब्द ही एक अभिजात बोध के रूप में स्वीकृत हो चुका है और उसकी शैली अत्यंत बासी और एकरस हो चुकी है। इन गीतों की रुझानों को देखकर ही आलोचकों ने धारणा बना ली कि गीतों में समकालीन जीवन मूल्य और यथार्थ का ताप व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह प्रेमपरक लोकप्रिय काव्योक्ति ही है। परन्तु छायावाद, छायावादोत्तर एवं नयी कविता के युग में जो गीत-रचनाएँ हुई, उनमें नवगीत एक साफ सुथरा और सम्पुष्ट व्यक्तित्व लेकर उभरा। निराला, नागार्जुन, बच्चन, मदन वात्स्यायन आदि के गीतों में जिन मानसिक और सामाजिक संघर्षों की अभिव्यक्ति हुई, वहीं नवगीत का स्वरूप उजागर हुआ। इस तरह गीत विधा जहाँ निजी अनुभूतियों के एकांत प्रतिफलन के कारण टूटने लगी थी, नवगीत ने अपनी सार्थक भूमिका वहीं से सँभाली। और कविता का व्यक्तित्व जब वादों और वक्तव्यों से खण्ड-खण्ड होने लगा, ऐसे समय में नवगीत एक जिम्मेवार विधा के रूप में सामने आया और तमाम वादों और वक्तव्य प्रति वक्तव्य से अलग एक द्विधाहीन फलक तैयार कर नए मानव मूल्य

और सामयिक विसंगतियों को व्यक्त होने के लिए एक विकसनशील भूमि दी। छायावाद ने जीवन, सम्बंध प्रेम आदि सबकी सहजता और मानवीता में एक अविश्वास पैदा कर दिया था। छायावादोत्तर और नई कविता काल तक गीतों में बहुत कुछ जुड़ा। अब जीवन जीवन की तरह, सम्बंध सम्बंध की तरह और प्रेम प्रेम की तरह लगता था, पर उसकी मनःस्थिति की लय कहीं से टूटी हुई लगती थी। नवगीत कवियों ने इन ह्रासशील पक्षों को सँवारा और अनुभूति के नएपन को नए शिल्प से सम्पन्न किया। कविता के विकास-क्रम को सम्पन्न करने की दृष्टि से नवगीत का सुपरिणत शिल्प सहज ही देखा जा सकता है :—

लदे हुए फूलों से स्वप्न
बिखर जायेंगे,
अमलतास के पीले गुच्छे
झर जायेंगे,
लौट नहीं आयेंगे
फिर ये पहर बसन्ती,
छूटो मत
मेरे क्षण !
मुझ से मत छूटो ! (रवीन्द्र भ्रमर)

कुछ विद्वानों ने नवगीत को आन्दोलन से जोड़ दिया है और इसीलिये उसकी भर्त्सना भी की है। परन्तु नवगीत ठोस कविता, युयुत्सु कविता, श्मशानी कविता आदि की तरह कोई वाद या आन्दोलन नहीं, यह तो कविता का सहज विकास है या उसकी अन्यतम परिणति है। कविता को जहाँ पहुँचना था, पहुँची है और उस पड़ाव का नाम ही नवगीत है। यह कोई उपविधा अथवा वक्तव्यों के सहारे चलाया गया वैसा वाद नहीं है जिसमें नए चमत्कारों के द्वारा कुछ समय में ही प्रशंसित हो जाना कविता का ध्येय होता हो। अकविता आदि वैसा ही काव्य-पथ था। अपनी सीमित उपलब्धि के साथ वह अल्पायु में समाप्त भी हो गया। पर नवगीत अपनी अक्षय प्राणशक्ति के कारण एक स्वस्थ अतीत और दीर्घायु वर्तमान के साथ प्रशस्त भविष्य के लिये प्रतीक्षोन्मुख है। आज नवगीत को वही लोग त्याज्य मानते हैं जो स्वयं नवगीत की रचना में पूरी तरह असमर्थ हैं। इस तरह वे नवगीत की भर्त्सना कर एक स्थिति तक उससे जुड़े भी रहना चाहते हैं। नवगीत उनके

लिए एक ग्रन्थि बन गई है। सच तो यह है कि अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र प्र० सिंह, केदारनाथ सिंह आदि कवियों को उनकी नई कविताओं ने जितना प्रशंसित किया, उनके गीतों ने उन्हें अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्धि दी। उनके गीतों की भूमिका अपनाकर ही नवगीत ने पारम्परिक गीतों से भिन्न अपनी एक नयी परिभाषा दी। इस परिभाषा के अनुरूप नवगीत में आज के आदमी के समस्त दुख-दर्द और राग-द्वेष अभिव्यंजित होते रहे हैं।

एक चाय की चुस्की एक कहकहा
अपना तो इतना सामान ही रहा।
चुभन और दंशन पैने यथार्थ के
पग पग पर घेर रहे प्रेत स्वार्थ के
भीतर ही भीतर मैं बहुत ही बहा
मगर कभी भूलसे कुछ नहीं कहा— (उमाकांत मालवीय)

नवगीत में सामाजिक परिवेश और यथार्थवादी स्वर इतना विस्तृत हो चुका है कि उसके कथ्य में राष्ट्रीय सीमा के साथ महादेशीय स्वर और अन्तर्राष्ट्रीय संकट भी सम्मिलित हो गए हैं। अपने देश के सूखे और बाढ़ संकट जिस तरह हमें आन्दोलित करता है, केनेडी और मार्टिन लूथर किंग की हत्या भी हमें उसी तरह हिला देती है। आज इन्दिराजी की नीति पर जिस तरह हमारी आंखें टिकी हैं, किसिंगर की वार्त्ता पर भी हमारा ध्यान लगा है। नवगीत समकालीन समस्त संदर्भों की अपनी अभिव्यक्ति का द्रव्य मानता है। धुआँता हुआ चुल्हा, दरकता हुआ काजल से लेकर बर्फानी घाटियों में टूट रहे पौरुष तक का विषय नवगीत में समाहित है। पारस्परिक मूल्य आज किस तरह अर्थशून्य हो गए हैं इसका तीखा अहसास भी इनको है—

लगती सब परिभाषा झूठी
कच्चे पीतल की अंगूठी
आजाना गीत के स्वरों में !
लौट रही रोशनी घरों में
जैसे कुछ खोया अधरों में। (शान्ति सुमन)

अग्रज कवियों द्वारा प्रेम के इर्द गिर्द जमा कर दी गई ढेर सी गलतफहमियों

को नवगीतकारों ने खुशफहमियों में बदल दिया है और इस धारणा को ठोस बनाया कि प्रेम एक नितान्त घरेलू और समाजिक प्रवृत्ति है। इस प्रकार नवगीत में जो रोमानी संदर्भ व्यक्त हुए हैं वे अत्यन्त सहज, मानवीय और मध्यवर्गीय हैं। प्रेम अब कहीं से भी इन्द्रजाल की तरह नहीं लगता। वह अत्यन्त पारिवारिक और निजी है—

ओरे ओ शिशिर चन्द !
छोड़ न जा पतझड़ में
गूँगी मर जाऊँगी
मैं फूलों के घर में
ना ना रे बन्धु !
मधुर मास क्या जाना रे ? —(ओम प्रभाकर)

केवल कथ्य ही नहीं, भाषा और छन्द के स्तर पर सम्प्रेषण की सादगी बिम्ब और चिन्तनों की ताजी तथा ग्राम गीतों का सहज सम्मोहन आदि नवगीत की विशिष्टताएँ हैं। आंचलिक अनुभूतियों से नवगीत को सम्पन्न करने के लिये ठाकुर प्रसाद सिंह का नाम श्रेण्य है।

नवगीत नई कविता का पूरक है। उससे उसका कोई विरोध नहीं। अपितु वह तो समकालीन कविता के बहुमुखी विकास के रूप में प्रतिफलित हुआ है। नवगीत की रचना - प्रक्रिया को देखने से स्पष्ट होता है कि यह रचनाकार से अलग नहीं होता। वैचारिक कविता अथवा कवि सम्मेलनी गीतों की तरह यह व्यक्तित्वहीन नहीं होता। जहां तक मेरा सवाल है, मैं गीत को अपने से अलग नहीं मानती। यह कब, कैसे और कहां से आता है, यह तो वे क्षण ही बता सकते हैं जो विवश करते हैं कुछ लिखने के लिये। और इसमें सन्देह नहीं कि जब वे आते हैं तो उन्हें बैठने के लिये जगह, तोड़ने के लिये तिनके और करने के लिये कुछ बातें मिल ही जाती हैं। यह रचनाकार का अपना एकांत है। उसकी अपनी इकाई है। सब कुछ व्यक्तिगत। जिस तरह पानी का कोई स्वरूप नहीं होता, वह जिसमें रखा जाता है; उसका स्वरूप ले लेता है। मेरी समझ से यही स्थिति अनुभूतियों का क्षणों के साथ है।

यह बात ठीक है कि आज की जिन्दगी बहुत कुछ गीतात्मक न होकर गद्यात्मक होती चली जा रही है। कुँवरनारायण के शब्दों में—"वह चेहरा

जो मेरे जिये चाँद हो सकता था, भीड़ हो गया है।" लेकिन भीड़ में भी तो खड़ा होना ही पड़ता है। लाखों के शोर में कहीं कोई महीन स्वर होता है जो सब पर तैरता रहता है; वरना आदमी ऊबकर वहाँ से भाग खड़ा होता। सभी लोग एक साथ नींद की गोलियाँ खाकर सो रहते। घरेलू परेशानियों के बीच मेरे लिये गीत एक बचाव का पक्ष भी रहा है—डूबते को तिनके का सहारा।

अब जहाँतक नवगीत का सवाल है—मैं अपनी ओर से कुछ भी दावा नहीं करती। परंतु वैसे कुछ लोग हैं जो सहज रूप से कही गई बातों को भी दावा मानकर अर्थान्तर कर देते हैं। हाँ, समय की नब्ज को मैंने समझने की भरसक कोशिश की है। यों जिस समय भी जो कुछ लिखा जाता है, वह उस समय के लिये देश, काल, परिस्थिति को देखते हुए नया होता है। अपने पिछले से अलग करने के लिये उसे एक नाम दे दिया जाता है; जैसे—छायावाद, प्रयोगवाद। आज का यह 'नव' भी कुछ इसी प्रकार का है। जैसा कि आज का युवा रचनाकार पाँच के बाद छठा, सातवां पैबन्द लगाने में विश्वास नहीं करता, बल्कि वह यथास्थिति को खोलना चाहता है। वह देखना चाहता है कि सम्बन्धों के प्याज में केवल छिलका है या उसके अन्दर कोई ऐसी ठोस वस्तु है जिसके चलते वह कहीं-कहीं बजाय खुश करने गुदगुदाने के एक Shock देता हुआ सा लगता है।

आस-पास, परिवार, नौकरी, भाग-दौड़, देश-काल की बदली हुई परिस्थितियों के बीच जहाँ भी निजता को ठेस लगी है, टूटने की स्थिति पैदा हुई है; मानवीय सम्बन्धों की दराज को मैं ने गीतात्मक अनुभूतियों से भरने की कोशिश की है और लगा है कि टूटती साँसों की उम्र कुछ और बढ़ गई है; संभवतः यही आज के गीत की सार्थकता भी है। मैं नवगीत को गीत कविता का कोई आन्दोलन नहीं मानती, सिवाय इसके कि यह गीत कविता का क्रमिक विकास है। सन् '६० के बाद कुछ ऐसी स्थितियाँ पैदा हो गई जिनकी वजह से आज की कविता, युवा कविता, प्रतिबद्ध कविता अकविता को नई कविता से अलग होना पड़ा। यही स्थिति गीत के साथ भी थी जो उस समय की टूटती-बदलती मनःस्थितियों को व्यक्त करने में अक्षम हो रहा था और नवगीत को आगे बढ़कर उसका स्थान लेना पड़ा। नवगीत मोहभंग से उत्पन्न Critical क्षणों की देन है। मेरे लिये नया

होने से पहले गीत होना जरूरी है और आदमी जिस आबोहवा में साँस लेता है उसके अनुरूप उसके चेहरे का भाव तो अपने आप हो जाता है।

औद्योगिक और यांत्रिक सभ्यता में जब से गुलाब की जगह नागफनी लगाने का फैशन बढ़ा, नवगीत के विरोध में व्यापक प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। उन प्रतिक्रियाओं ने नवगीत को इतना फायदा तो पहुंचाया कि वह जिस 'मैनरिज्म' का शिकार होने जा रहा था, बच गया। बात रही गुलाब और कैक्टस की तो नवगीत अपने परिवेश में दोनों का दाय स्वीकारता है। कलापक्ष में नये बिम्ब, नये प्रतीक, नये अप्रस्तुत और नए छन्दों का समादर नवगीतों को नया व्यक्तित्व देता है। विविध संदर्भों के नएपन के बावजूद इसमें सहजता का भी निर्वाह होता है—

ठूठी शाखें पतियाने लगी
घेर-घेर कर बतियाने लगीं
ऐसे में कौन इन्हें टोके।
फागुन का रथ कोई रोके। देवेन्द्र कुमार

अनुभूतियों को सर्वथा नए रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से नवगीत अकेला उदाहरण है। नयी कविता पर यह आरोप लगा था कि इन कविताओं में भाव और रूप की दृष्टि से इतनी समानता होती है कि लगता है, एक ही कवि ने विभिन्न समयों में इनकी रचना की है। यह आरोप आलोचक तो क्या नयी कविता के कवि ने भी उस पर लगाया था। नवगीत में यह उबाऊ समानता नहीं मिलती। हर नवगीतकार अपना एक अलग व्यक्तित्व लेकर आता है। उसके गीतों की अपनी एक 'आइडेन्टिटी' होती है।

कृष्ण कुमार भट्ट पथिक द्वारा सम्पादित

संदर्भ

सम्पर्क : आस्था प्रकाशन, तार बाहर, तालाब पार
बिलासपुर (म० प्र०)

नवगीत के विरोध में नयी कविता की ओर से जो विस्तारवाद चलाया गया है, वह एक राजनीतिक मायाजाल के सिवा कुछ नहीं है। अज्ञेय जो स्वयं अनेकान्त काव्य विधाओं और रूपों के साथ नवगीत के भी पुरस्कर्त्ता तथा पुरोधा हैं, ने नवगीत पर कई प्रहार किये हैं

पहला प्रहार : कविता और गीत का विभाजन कृत्रिम है।
दूसरा प्रहार : काव्य रचना में गीत गौण विधा है।
तीसरा प्रहार : गीत श्रव्य कविता और आल्हा की परम्परा में है।
चौथा प्रहार : नयी कविता के गीत स्वीकार्य हैं। (नवगीत नहीं) ?
—'आलवाल' के आधार पर।

कविता और गीत का विभाजन एक स्थिति तक कृत्रिम हो सकता है जहाँ दोनों की क्रमिकता अक्षुण्ण रहती है। इस तरह नवगीत सम्पूर्ण कविता परम्परा की अनिवार्य परिणति के रूप में स्वीकृत है। पर अज्ञेय का मंतव्य यह नहीं। वे कविता के समुद्र में गीत को एक बूँद की तरह विलीन कर देना चाहते हैं। उन्हें खतरा दीखता है उन कवियों के लिये जो नवगीत के दायरे में किसी प्रकार नहीं आ सके हैं और इसतरह उनकी प्रसिद्धि प्रश्नाहत हो सकती है। इसलिये वे गीत के व्यक्तित्व को कविता में विलीन कर देना चाहते हैं। मगर नवगीत ने तो सबकी उपलब्धियों और दाय को स्वीकारा है जिन्होंने उसके लिये जेनुइन कुछ किया है। नवगीत ने इसलिये अपने को नया संस्कार नहीं दिया कि कविता के सामने वह अपना सहज व्यक्तित्व उजागर भी न कर सके। काव्य रचना में गीत को गौण विधा कहकर अज्ञेय उसको उसकी संपूर्ण उपलब्धियों से काट देना चाहते हैं और नवगीतकारों के प्रति एक हीन ग्रंथि पालते हैं। यदि अज्ञेय गीत के महत्व को स्वीकारते हैं तो फिर कविता और गीत का विभाजन कृत्रिम कहने के बाद गीत को गौण विधा क्यों मानते हैं ? अज्ञेय को सचमुच गलतफहमी हुई है और इसका मूल कारण कवि सम्मेलनी गीत और नयी तथा सस्ती पत्र-पत्रिकाओं में छपे गीत भी हैं जो जेनुइन नवगीतों से एकदम कटे हुए हैं।

गीत में नए आयाम जोड़ने के क्रम में अज्ञेय के कितने ही गीतों के उदाहरण दिए जाते हैं। इसमें दो मत नहीं कि उन्होंने नवगीत कविता को समृद्ध बनाया है फिर वे गीत को उसकी भूमि और मर्यादा से विच्छिन्न क्यों करना चाहते हैं ? गीति—तत्व की सघनता सफलता के कारण ही तो नवगीत पूर्ववर्ती गीतों से अपने को अलग और विशिष्ट मानता है। फिर अज्ञेय को यह कैसे लगा कि "आज का गीतकार न तो संगीत की परम्परा में है और न काव्य की परम्परा में"। उन्होंने ऐसा कहकर नवगीतकारों की प्रतिभा और

मौलिकता को अस्वीकारने की चेष्टा की है। नयी कविता के जिन गीतों और गीतकारों को उन्होंने स्वीकार किया है, वे गीतकार ही नवगीत को प्रस्थान विन्दु तक ले जाने में समर्थ हुए हैं। उन गीतकारों ने ही आस्था और विश्वासपूर्वक गीत को नये स्वरूप में ढाला है। गेयता आज भी नवगीत का अंतिम निर्धारकतत्व नहीं है। उसका गीततत्व अथवा गीत्यात्मकता अलग से महत्वपूर्ण है। नयी कविता के गीत को स्वीकार कर और बाकी के लिये चुप रहकर अज्ञेय ने सप्तक के कवियों की वकालत की है। सप्तकेतर तथा आजके अन्य नवगीतकारों के प्रति उनका कोई मोह नहीं। अर्थात् सप्तक से अलग और आगे जाकर वे कोई बात करना ही नहीं चाहते। यह उनका आग्रह है, और कुछ भी नहीं। आग्रहों के चौखटे में कोई निष्पक्ष बात सामने नहीं आती।

अज्ञेय की इन घोषणाओं, 'माध्यम' में श्री राम वर्मा के वक्तव्य आदि से नवगीतकारों की धारणाएँ अनिश्चित हो गईं। उन्होंने देखा कि अज्ञेय का आशीर्वाद जिन्हें मिलता है, वही सिद्ध-प्रसिद्ध कवि होते हैं। अतः उन में से कुछ नयी कविता से प्रतिबद्ध हो गए। नवगीतकारों के व्यामोहों के कारण नवगीत आन्दोलन की कमजोरियां सामने आईं। रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि ऐसे ही व्यामोहों से भरे नवगीतकार हैं जिन्होंने अनिश्चित धारणाओं के कारण ही नयी कविता से प्रतिबद्धता स्वीकार कर ली और नवगीत जो उनसे इतना अधिक भरोसा रखता था, रास्ते में रह गया। उपर्युक्त नवगीतकारों की दृष्टि इतनी कन्फ्यूज्ड होकर सामने आई कि नवगीत स्वयं निर्णय अनिर्णय के दो ध्रुवों में दोलायित होकर रह गया। इस प्रकार साठोत्तर कविता के ४५ आन्दोलनों की विवेचना में नवगीत के प्रति जानबूझकर उपेक्षा बरती गई। परन्तु प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति से लगता है कि नवगीत साठोत्तर कविता की परिणति के रूप में प्रतिफलित हुआ है। इसीलिये उसको बहुमुखी प्रतिवादों का सामना भी करना पड़ा है।

आज स्थिति यह है कि संतुलित वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति नवगीत में ही संभव है। सामूहिक संवेदनता की दृष्टि से नवगीत ही एकमात्र काव्य विधा है जिसमें समूह के राग-विराग, दुख-दर्द को स्वर दिया जा सकता है। इस दृष्टि से राजेन्द्र प्रसाद सिंह, बालस्वरूप राही, शलभ श्री राम सिंह, रमेश रंजक, आदि के नवगीत अलग से विवेचना की अपेक्षा रखते हैं। हिन्दी-कविता प्रगति और प्रयोग की मंजिलों को पारकर नवगीत के प्रशस्त पथ से चल रही है। समकालीन जीवन को विस्तृत भूमिका में देखने के लिये नवगीत रचना अनिवार्य शर्त बनकर आयी है।

नवगीत : अष्टावक्री देह में तेजोदीप्त आत्मतत्व

● प्रेम शंकर रघुवंशी

अन्तर्लय गीत की एक खास तासीर है और नवगीत के सन्दर्भ में तो यह एक जरूरी शर्त है। कुछेक गीतकार गीत के शरीर-शृंगार में इस क़दर जुटे हैं कि उसकी आत्मा गौण होकर रह गई है। आड़े-तिरछे होकर गुजरने से ये लोग कतराते हैं।

नवगीत कवि गीत के शरीर-मोह में न पड़कर उसके कथ्य, उसकी रचना शक्ति बल्कि उसकी आत्मा को सजाता-संवारता है।

समस्त तनावों के बीच जीवन के संतुलन को खोज पाना आज की सही दृष्टि है। इसे दूसरे शब्दों में आधुनिक बोध या युगीन चेतना भी कहा जा सकता है।

जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं से कभी-कभी सीधे टकराने की बजाय उनका मखौल उड़ाना भी अब एक विकल्प हो गया है। इस प्रयास में यदि गीत का ढाँचा ऊबड़-खाबड़ हो जाये तो भी कोई हर्ज नहीं, लेकिन जानबूझकर ऐसा करना आवश्यक नहीं है।

शरीर से अष्टावक्र बने रहकर भी नवगीत बकवासी काव्यान्दोलनों की विदेह सभा को अर्थहीन बताकर शरीर या चर्म को देखकर हँसनेवालों को चर्मकार की व्यंग्योक्ति से आभूषित कर अपनी अर्थवत्ता सिद्ध कर सकता है। किन्तु इस तुर्शी का महत्व तभी होगा जब गीत अपनी अष्टावक्री देह में भी आत्मतत्व को तेजोदीप्त बनाये रखे। तयशुदा नामों की भीड़ से छिटककर आज नवगीतकार को इसी संकल्प के साथ प्रस्तुत होना है।

परिवेश की सार्थकता के प्रति समर्पित और निरर्थकता को उपेक्षित करके जो भी गीत आड़ी-तिरछी राहों से हमारे सामने आयेंगे, वे स्वागतेय होंगे। इस प्रक्रिया में गीत शिल्प और कथ्य के नये-नये बंजर तोड़ेगा।

मानव जीवन और गीत दोनों की सार्थकता का भी यही राज है कि राजपथों को छोड़कर कदम-कदम पर आगे काफी दूर देखते हुए नये-नये मार्ग

प्रशस्त किये जायें। जीवन के ठण्ढेपन अथवा बासीपन में भी जीवन-ताप का संचार आवश्यक है।

गीत की प्रकृति चमत्कार की नहीं वरन स्वाभाविकता की है। उसमें फफूंद के तन्तुओं की अपेक्षा टटकापन और फेनिलता जरूरी है। मैं इसी 'सहज' से प्रेरित होकर कभी प्रकृति के लघु–विराट दृश्यों से संवेदित होकर तो कभी युगीन संदर्भों के साथ अपनी अनुभूतियों का तादात्म्य कर, गीत रचना में संलग्न हूं।

एक और प्रकृति है—विज्ञान की प्रकृति। इस प्रकृति ने सभी को प्रभावित किया है। हम भौतिक प्रकृति को अपने आसपास की विराट प्रकृति का एक और इजाफा न मान, उसे अलग करके देखते हैं। यह द्वैत युग स्वभाव के प्रतिकूल है। यदि प्रकृति मानवीय संवेदनाओं की प्रेरणा–स्रोत है तो यांत्रिक अनुभूतियों का एक पक्ष भी कम रोमांचक नहीं है। गीतकार का दायित्व है कि वह इस प्रकृति के सुन्दर और विरूप दोनों ही पक्षों को सप्रवेद्य ग्रहण भी करे और उन्हें सम्प्रेषित भी।

———

समसामयिकता का सही परिप्रेक्ष्य

परिवेश

सम्पादक : कृष्ण कुमार शर्मा

सम्पर्क : परिवेश प्रकाशन, डी०—३
पटेल मार्ग, गाजियाबाद।

प्रामाणिकता की तलाश में
खुला दस्तावेज

लेकिन

सम्पादक : विनय अश्रु

सम्पर्क : शब्दमहल, रतनपुर,
गिद्धौर, मुंगेर (बिहार)

साठोत्तरी नवगीत : एक दृष्टिकोण

नचिकेता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश का माहौल बड़ी तेजी के साथ बदला। इस प्रक्रिया में जीवन के प्रत्येक धरातल पर बदलाव आये और इसका दबाव साहित्य की प्रत्येक स्नायुओं (विधाओं) को झेलना पड़ा। जिन्दगी की इन्हीं तब्दीलियों के कारण राग-तत्व का ह्रास हुआ और जीवन-मूल्य अति बौद्धिकता के पांव-तले दब गये। इसलिए सृजन प्रक्रिया जीवन-प्रक्रिया की बौद्धिकता हावी होने के कारण जटिल और असामान्य हो गयी, लेकिन "जीवन के दारुण-पाश अभी इतने क्रूर और दमघोंट नहीं हैं कि हमारी सारी सरलता घुट जाये (डा० शिव प्रसाद सिंह)। जीवन की तमाम विसंगतियों, जटिलताओं और दबावों के बीच मानव-मन में कहीं कहीं न कहीं रूमान का अस्तित्व मौजूद रहता है। एण्टी रोमाण्टीसिज्म के प्रवर्तक टी० एस० इलियट की 'बेस्ट-लैंड' में भी रूमान के संस्पर्श और अनुभूति की तरलता सहजता से महसूसी जा सकती है और रूमान के संस्पर्श से ही गीत की उत्पत्ति होती है "जहां मानव-मन किसी सौन्दर्य, राग, सत्य के किसी कोण से गहरे छू जाता है, वहां गीत की भूमि होती है" (डा० रामदरश मिश्र), अनुभूति की यह गहरी छुअन ही गीत का उद्भावक-स्रोत है, पर शिल्पगत लचीलेपन और कथ्यगत प्रयोग धार्मिता के कारण नवगीत अनुभूति की गहरी छुअन होते हुए भी पारम्परिक गीतों से भिन्न हैं।

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नवगीत नयी कविता के नितान्त समीप है, अलगाव केवल अभिव्यक्ति के धरातल पर स्वीकृत है। भोगे हुए क्षणों, समाज के द्वारा अनुभूत सत्यों तथा परिवेश में रूपे आत्यंतिक यथार्थ को नवगीत निस्संग रूप से अभिव्यक्त करता है। नवगीत नयी कविता की तरह एण्टी रोमान्टिकता का आग्रही होते हुए भी व्यक्तिनिष्ठ, कोमल, संपृक्त तथा संवेगात्मक होता है। नवगीत में आत्मनिष्ठा, समर्पण, संवेदनशीलता एवं जीवन-स्थितियों के प्रति आवेदन की मुद्रा के साथ यांत्रिकता, समसामयिक तिक्तता, आधुनिकता और बौद्धिक उहापोह के स्थान पर मनस्तापों और मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण होता हैं। एक नवगीतकार जीवन संघर्षों से पलायन करने की अपेक्षा जूझने में विश्वास करता है। इसलिए नवगीत का प्रबल और प्रमुख्य स्वर है; संघर्ष का स्वर। उदासीनता की कुहेलिका को

चीरकर नई किरणों को उजागर करने का स्वर। कहने का तात्पर्य है कि नवगीत और नयी कविता परस्पर विरोधी नहीं प्रत्युत एक दूसरे के पूरक हैं— एक ही सिक्के के दो पहलू।

नवगीत की लयवत्ता को लेकर पाठकों, आलोचकों तथा रचनाकारों के बीच भारी अन्तर्विरोध है। "अन्तराल—१" की समीक्षा लिखते हुए महेश्वर अरिन्दम ने स्पष्ट लिखा कि "जो गेय नहीं, वह गीत कैसा" ? यानी गेयता गीत की अनिवार्य शर्त है। जब कि विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतों के अध्ययन करते समय यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि उन्होंने दो प्रकार के गीतों की सर्जना की थी। एक जो साहित्यिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शिल्प और कथ्य को दृष्टि में रखकर लिखे गये गीत हैं और दूसरे संगीत के तत्वों को ध्यान में रखकर लिखे गये गीत, जो 'रवीन्द्र संगीत' के नाम से जाने पहचाने जाते हैं। 'लिरिकल पोयेट्री' के समर्थक डब्ल्यू बी० इट्स ने भी कहा है कि "कविता में अगर 'रिद्म' (लयवत्ता) आ जाय तो वह गीत या गीत कविता कहलाती है" कहने का तात्पर्य है कि नयी कविता का आग्रह अगर लय की ओर जाय तो वह नवगीत कहलाने की अधिकारिणी हो जायेगी। भले ही यह लय छन्दों के ऊपर निर्भर नकर अर्थ की लय या मनः स्थितियों की लय अथवा अनुभूतियों की लय पर निर्भर करती है।

प्रसिद्ध अस्तित्ववादी दार्शनिक गैब्रिएल मारसेल का कथन है कि "परिस्थितियों के साथ जूझना ही किसी सही आदमी की पहचान है" इसलिए नवगीत ने सही आदमी की सही कविता की खोज में रूमानी संस्पर्श एवं कोरी भावुकता के स्थान पर जन-जीवन से सम्पर्क जोड़ा और नदी-नालों, बाबी-बियाबानों, पर्वत-कन्दराओं, फूल-पत्तियों और स्वप्न-लोक में बिहार करने के बजाय पैने यथार्थ तथा जीवन के दुख-दर्द को अभिव्यक्ति देने के लिए अग्रसर हुआ। इस प्रकार इसके मुहावरे, बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत, शब्द आदि दैनिक जीवन और आम बोल-चाल में प्रयुक्त होने वाली भाषा के शब्द-कोष से लिए जाने लगे।

प्रवृति और प्रकृति के अनुसार साठोत्तरी नवगीत के तीन प्रमुख स्वर हैं :— पहला स्वर आधुनिकता बोध और समसामयिका को वाणी देने के लिए प्रतिबद्ध है। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि यह आधुनिकता और सम-सामयिकता क्या है ?—प्राचीन परम्पराओं के प्रति विद्रोह, अनैतिक मानों के प्रति अनास्था, सभ्यता एवं संस्कृति के शब्दों में निहित अर्थवत्ता की क्षीणता,

पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन-मूल्यों का विघटन, भीड़-भाड़ एवं यांत्रिकता के बीच तैरते एकाकीपन या अजनबीपन की अनुभूति एवं व्यष्टि-केन्द्रित जीवन-यापन की वृति का चित्रण करना ही आधुनिक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि और समसामयिकता की परिधि में समाहित है और साठोत्तरी नवगीत में इसका चित्रण बखूबी मिलता है। आधुनिकता के प्रभाव में आते ही नगर-बोध और औद्योगिक सभ्यता के विकास के फलस्वरूप मनुष्य के अर्थ-केंद्रित होने से पारिवारिक सम्बन्धों का विकेन्द्रण भी इस युग के गीतों में चित्रित होने लगा। नवगीत में उभरनेवाले नागरिक चित्रों में सबसे अधिक भीड़-भाड़ और भाग-दौड़ से ऊबे शहरी जन-जीवन की त्रासदी, स्वार्थपरता, ऊबलती भीड़ में विसर्जित व्यक्ति का विलुप्त सा अस्तित्व-बोध, और नागरिक जीवन के खोखलेपन से ऊबे यांत्रिक मनुष्यों के दुख-दर्द के चित्र उभरे हैं—

बून्द-बून्द रिस रहीं हवाएं
बाहर-भीतर घिरीं घटाएं
सब कुछ लगता ऊबा-ऊबा" (देवेन्द्र कुमार)

टूटी हुई सुबह यहां
झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर के
शापित आराम
गांठों-सी गलियों में भरी-भरी बदबू
साफ हवा की जगह पिएं सभी जहर
पत्थरों का शहर। (शान्ति सुमन)

महानगर के इन चित्रों के साथ-साथ मानव-जीवन की ऐब्सर्डीटी से उत्पन्न निराशा, कुंठा, संत्रास, विघटन, खीझ थकन, ऊब, पराजय, अनास्था, विकेन्द्रण, घुटन, अजनबीपन और मोहभंग की स्थिति का भी साठोत्तरी नवगीत में निरूपण और विश्लेषण धड़ल्ले के साथ हुआ। लेकिन इसकाल के नवगीतों में केवल ऐब्सर्ड अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति नहीं मिली बल्कि जीवन की उत्कट लालसा तथा दारूण दुख-दर्द के दंश-ताप सहने के बावजूद जिन्दा रहने की आशाजनक ललक को भी ध्वनित किया गया है। एक ओर इन्हें दिवस यानी समय के खोखलेपन का अहसास है तो दूसरी तरफ भूखे संत्रास और अभावों से एलबम सजाने का चाह :—

सारे दिन पढ़ते अखबार
बीत गया है फिर इतवार —(महेश्वर तिवारी)

आज का यह काल मूल्यों के संक्रमण का काल है। देश में चारों ओर युद्ध की विभीषिका फैल रही है। गरीबी, भूखभरी, बेरोजगारी, मंहगाई के नाखूनी पंजे में दबा मनुष्य फड़फड़ा रहा है, जिससे असंतोष का जहर नस-नस में ज्वालामुखी सुलगा रहा है। इसलिए साठोत्तरी नवगीत में इस भ्रष्ट व्यवस्था तथा विषम अर्थ-तंत्र के विरूद्ध पनप रहे युवा आक्रोश को भी स्वर दिया गया है। नवगीत का यह बदलता तेवर हो सकता है कि छायावाद के खंडहर से बीनकर लाये गये कांच के टुकड़ों को कूतूहल से देखनेवाले तथा-कथित नवगीतकारों या नवगीत-समीक्षकों की आंखों में शूल की तरह चुभ जाय :—

तोन्दायी देहों पर फिसल रहा
बार-बार भूखा संतोष
व्यक्त किये जायेंगे गाली से
कब तक यूं झूठे आक्रोश
विस्फोटक तत्वों की सीमाएं उकसाकर
आओ, आकाश करें —(नचिकेता)

साठोत्तरी नवगीत का दूसरा प्रमुख्य स्वर लोक चेतना और लोक-धुनों को आधार मानकर लिखे गये नवगीतों में परिलक्षित होता है। लोक धुनों और लोक गीतों के पैटर्न पर लिखे गये गीतों में अधिकांशत: रूमानी संस्पर्शों को ही नया आयाम देकर उकेरा गया, फिर भी आंचलिक अभिजात्य और गंवई गंध से संश्लिष्ट मन:स्थितियां, सांकेतिकता, संक्षिप्तता और संवेदन-शीलता टटकेपन की ओर उन्मुख हुई है। इन गीतों के बिम्बों, प्रतीकों और अप्रस्तुतों में चिमनियों के धुएं की कसैली गंध नहीं बल्कि मिट्टी की सोंधी महक सहज निश्चलता से ओत-प्रोत है। संदली हवाएं, मदभरी चांदनी, मेघ-शशक, कजलाई सन्ध्या, सोनाली किरणें, रात की सोनतरी, किंजल्की छांव ..... जैसे अपरिचित बिम्बों प्रतीकों के स्थान पर कंगना, मंदिर के घंटे शंख, आरती, पीपल तुलसी का चौरा, लिपा-पुता आंगन, दीपक आदि चिर-परिचित शब्दों में सांकेतिक अर्थवत्ता की तलाश करके बेचैन मन:स्थितियों से जुड़ी हुई मंगलेच्छा को इन गीतों में संदर्भित किया गया है। इस प्रकार

के गीतों में मन:स्थितियां कथ्य न होकर परिवेश के तनाव को ध्वनित करती हैं। अत्यानुप्रासिकता, कुछ प्रश्न और फिर उनके उत्तर में ही पूरे गीत के ताने बाने और बनावट निहित रहती है :—

ना ना रे बन्धु ! अभी जाना रे
कल ही पहना है जो देख तनिक कंगना ये
देख तनिक मुझको ये, लिपा-पुता अंगना रे
ना ना रे बन्धु ! तनिक देख ये मना ना रे
—(ओम प्रभाकर)

साठोत्तरी नवगीत के तीसरे स्वरूप या स्वर का दर्शन प्रकृति की अन्विति से लिखे गये गीतों के माध्यम से किया जा सकता है। नयी पीढ़ी के गीतकारों ने प्रकृति के भीतरी सत्यों तथा तत्वों का बिवेचन और चिन्तन की कोरी दार्शनिकता का विरोध किया है, यथार्थ की भूमि पर उतरकर प्रकृति के उपकरणों के सहारे संश्लिष्ट मन:स्थितियों का उद्‌घाटन किया है। इसके बिम्ब, प्रतीक और शिल्प-विधियों तथा सत्य द्वारा समाज का अभिव्यक्त रूप इस ढंग का है कि कुछ लोग अधुनातन नवगीतों में प्रकृति-चेतना के अस्तित्व के प्रति ही संदिग्ध है। जीवन की हर संभव अनुभूतियां प्रकृति के वाता वरण में सन्निहित पायी जाती है और उसके माध्यम प्रतीकात्मक और अभि-व्यंजनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति से जीवन के यथार्थ सत्य का अनावृति-करण साठोत्तरी नवगीत का श्रेय है। प्रकृति-सत्य मानवीय चेतना के जितना ही निकट जाता है, काव्य-सौन्दर्य में उतनी ही प्रांजलता मिलती है जो साठ के बाद नवगीतों में स्पष्ट दीख जाता है। सारांशत: कहा जा सकता है कि आज के नवगीतों यानी साठोत्तरी नवगीतों में ऐसी प्रतीक संयोजनाओं, बारीक चित्रांकन तथा बिम्ब योजनाओं की प्रयुक्ति अन्तरंग के अप्रकट प्रसंगों की प्रस्तुति है जिससे पाठक चकित चमत्कृत हो जाते हैं, जैसे—

पानी पर
रोशनी गिरी; पानी में पड़ गयी दरार
चाँद की
एक अर्गनी बाँध गयी, काँपते कगार —(रमेश रंजक)

इसके साथ-साथ नवगीत का विरोध भी इस काल में कम नहीं हुआ है। कई सिरफिरों ने मिलकर नवगीत का पोस्टमार्टम तक कर दिया।

"गीत न रहा, गीत-गीत चिल्लानेवाले भी महसूस करें कि उनका बोध पीछे पड़ चुका है। गीत नाम की कोई विधा नहीं हो सकती है आज। कारण, आधुनिक बोध की सबसे बड़ी रुकावट या रूढ़ि या बाधा या जंजीर यह गीत विधा रही हैं।" सकलदीप सिंह ने अपना आक्रोश नवगीत पर उतारा। फिर क्या था ? उनके चमचों ने नवगीत को मृत घोषित कर दिया। फिर भी नवगीत लिखा जाता रहा, पढ़ा जाता रहा और जब तक सृष्टि है; लिखा जाता रहेगा। इस तथ्य का अट्टहास सकलदीप सिंह और सकलदीपी चमचों को भी है कि सिक्के उछालना जितना सरल है, नवगीत लिखना उतना ही विरल।

दूसरी ओर नवगीत का पुरोधा और जन्मदाता कहे जाने का ख्वाब देखनेवाले डा० रवीन्द्र भ्रमर की दृष्टि में "आधुनिक युग-बोध का जो भी अच्छा गीत हो, उसे गीत कहने के बजाय नयी कविता कहा जाना चाहिए" (दिल्ली की एक काव्य-गोष्ठी)। मेरी समझ से इन पंक्तियों में डा० भ्रमर का छायावादी संस्कार और लिजलिजा भावुक गीतकार ही सिर उठाता नजर आता है अथवा हो सकता है कि आधुनिकता, समसामयिकता, गत्यावरोध, युवा-आक्रोश, अस्वीकृति, दायित्व-बोध तथा विद्रोह के परिप्रेक्ष्य में इनकी गीत-क्षमता चुक गयी हो। 'कुत्ता भुके हजार, हाथी चले बजार' वाली कहावत को चरितार्थ करती हुई नवगीत-विधा निरंतर आधुनिक युग-बोध या युग के दर्द को अभिव्यक्त करती निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है। राजेन्द्र प्रसाद सिंह, ओम प्रभाकर, उमाकान्त मालवीय, नईम, शलभ श्रीराम सिंह, रमेश रंजक, देवेन्द्र कुमार, माहेश्वर तिवारी, सोम ठाकुर, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, रघुनाथ प्रसाद घोष, प्रेम शंकर रघुवंशी, चन्द्रदेव सिंह, नरेश सक्सेना, छविनाथ मिश्र, शान्ति सुमन, मणि मधुकर, युगमंदिर तायल, सूर्य-भानु गुप्त, कुन्तल कुमार, सत्यनारायण, लक्ष्मीकान्त सरस, कृष्ण कमलेश, सुधा गुप्ता, आदि नवगीतकारों के साठोत्तरी नवगीतों में अनुभूति की प्रमाणिकता, संश्लिष्ट मनःस्थिति और प्रतिबद्धता की प्रतिच्छाया स्पष्ट देखी जा सकती है।

★

समानधर्मा नवगीतकारों से कुछ आपसी बातचीत

उमाकान्त मालवीय

जब भी कुछ नया अंकुर जैसा, धरती की गर्मी, उसके गर्भ के अंधकार और उसकी सख्त पसलियों को तोड़ता हुआ, चुनौती की मुद्रा में सर उठाता है तो वर्षा, आतप, शीत, आँधी, ओले सभी जेहाद की मुद्रा में उस पर अपनी बल आजमाइश करते हैं, कभी सफल होते हैं तो कभी उस दुःसाहसी के सामने पराजित होकर सर पीट लेते हैं। यही स्थिति नवगीत की हुई, इधर नवगीत का अंकुर फूटा और उधर मेरे सम्मानित मित्र सकलदीप सिंह जैसे लोगों ने जेहाद की मुद्रा में उस पर आक्रमण शुरू किया, कल के गीत पर सफल आक्रमण करने वाले नयी कविता के पुरोधा भी क्यों बाज आते, मगर शायद यह वह मूंग नहीं थी जिसे छोर चर जाते, धीरे-धीरे जेहाद का 'वह बल गयो थकाय' और कल का अंकुर बिरवा होता हुआ आज एक छतनार वृक्ष के रूप में स्थापित है।

आक्रमणों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा था कि नवगीत सभी अधुनातन संवेदनाओं का संवाहक नहीं हो सकता, इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप नवगीतकारों की ओर से कहा जाने लगा कि नवगीत सभी अधुनातम संवेदनाओं का संवाहक है। प्रतिक्रिया बहुधा अस्वस्थ भी होती है। मैंने बराबर यह महसूस किया है कि दोनों अतिवादी दावें हैं, एक छोर है नवगीत का अन्ध विरोध और दूसरा छोर है शिविरागत अन्ध दुराग्रह। सच्चाई इन दोनों के बीच कहीं है। मान लीजिये कि यदि कोई एक विधा समस्त अधुनातन संवेदनाओं की संवाहक हो सकती तो क्या साहित्य की अन्य विधायें अनावश्यक न हो जातीं ? अधुनातन युगबोध को अभिव्यक्ति देना एक विराट व्यापक महत् दायित्व है जिसे अपनी-अपनी सीमा में सभी विधायें वहन कर रही हैं। अस्तु, स्पष्टतः यदि नवगीत समस्त आधुनिक भावबोध को अभिव्यक्ति नहीं दे सकता, तो इसे स्वीकारने में ऐसी क्या हिचक है ? हाँ, इस संदर्भ में नवगीत की भी अपनी एक भूमिका है, जिसे वह पूर्ण दायित्व-बोध से निभा रहा है। इसे बिना किसी प्रकार की हीन ग्रन्थि को प्रश्रय

दिया कहा जाना चाहिए। सर्जन अपराजेय आत्मविश्वास से होता है न कि इस प्रकार की हीन ग्रन्थियों से जिसे हम अपने अन्दर पालने के आदी हो गये हैं।

सामान्यतः लोगों का यह कथन है कि नवगीत, नयी कविता की प्रतिक्रिया है। इसे मेरे समानधर्मा नवगीतकार भी कभी दबी जबान कभी खुलकर स्वीकार करते हैं। वस्तुतः नयी कविता अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभा चुकी थी, वह नये अर्थों में नयी रह भी नहीं गई थी और अपने को दुहराने लगी थी, ऐसे में नयी कविता के गर्भ से नवगीत का हिन्दी कविता के विकास के अगले सोपान के रूप में अभ्युदय हुआ है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रतिक्रिया अधिकांशतः रुग्ण ही होती है और इसलिये नवगीत प्रतिक्रिया स्वरूप तो हो ही नहीं सकता, वरन् वह एक स्वस्थ विकास है।

हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलनों ने वे चाहे जितने अल्पजीवी हों, नई नई जमीन तोड़ी है और हिन्दी कविता के विकास को एक स्वस्थ ध्वरा दी है। आन्दोलनों की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण कैजुअलटी होती है मौलिकता। आन्दोलनों के कारण पूर्वाग्रहों का जन्म और पोषण होता है। अभिव्यक्ति की मुद्रायें या मान्यतायें रूढ़ होती हैं और तेवर या फिकरे मुहावरे पिटने लगते हैं। लगता है एक स्वर के पीछे कोरस गाया जा रहा है या एक इमाम के पीछे लोग नमाज पढ़ रहे हैं। यदि किसी का स्वर अलग थलग जा पड़ता है तो इसलिये नहीं कि वह कहीं अपनी मौलिकता के प्रति आग्रह के कारण अलग जा पड़ा है वरन् कोरस में साथ न गा सकने के शऊर के कारण ही ऐसा हो जाता है, लगता है जैसे एक कीर्तनिया के पीछे सभी कीर्तन कर रहे होते हैं। निश्चय ही जब सामान्यीकरण किया जाता है तो अपवादों के साथ तो अन्याय हो ही जाता है।

नवगीत को खतरा उसके आलोचकों से नहीं वरन् उसके नादान दोस्तों से है, गलत छन्द लिखेंगे और मुक्त छन्द के रचनाकारों पर रबड़ छन्द, केचुआ छन्द आदि कहकर कीचड़ उछालेंगे। ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक छोड़कर लोक शब्दावली की भरमार कर देंगे, या फिर नयी कविता में अनेक बार कहे गये कथ्य को केवल नयी छन्द योजना के अन्तर्गत दुहरा देना ही तो नवगीत नहीं है।

किसी युग में जो अन्याय अंगरेजी के 'कैरेक्टर' शब्द के साथ हुआ वही आज रूमान के साथ हो रहा है। कैरेक्टर एक व्यापक शब्द है, उसको केवल यौन नैतिकता के दायरे में घोट दिया गया, इसी प्रकार प्रगतिशीलता, एक व्यापक शब्द है, लेकिन उसे जीवन के सभी धीर उदात्त पक्ष को नजर से ओझल कर, लाल सलाम, हँसिया हथौड़ा, किसान-मजदूर, रोटी आदि थोड़े से विषयों तक सीमित कर छोड़ दिया गया। आधुनिकता के अतिरिक्त आग्रह के अन्तर्गत आज रूमान अन्त्यज बना दिया गया है। मेरा अपना मत है कि रूमान के अभाव में कविता तो क्या जीना तक सम्भव नहीं है। रचनाकार तो विशेष रूप से संवेदनाशील प्राणी होता है। रूमान का अर्थ मात्र प्रणय की स्थूल अभिव्यक्ति ही तो नहीं होता। सस्ती भावुकता से विवेकजन्य दुराव की एक स्थिति समझ में आती है, लेकिन परहेज तो निश्चित रूप से रुग्ण मनःस्थिति का परिचायक है। हर कोई किसी एक स्थिति विशेष के प्रति क्यों नहीं ऐसा कुछ रिऐक्ट करता कि, जिससे रचना सम्भव हो, जीवन जगत के प्रति यह रचनाकार का राग तादात्म्य का ही रुख है, जिसके कारण वह कुछ सिरज पाता है, जिस दिन वह इस मुख्य प्राणधारा से कट जायगा, सृजन असम्भव हो जायेगा।

सर्वेश्वर, वात्स्यायन आदि के इक्का दुक्का गीतों को उद्धृत कर आज का पक्षधर आलोचक, जो नवगीत पर प्रहार करने को प्रतिबद्ध है, नवगीत के इम्पैक्ट को नकार देता है। पंतजी ने भले ही धोबियों और चमारों के नाच पर कविता लिखी हो, निराला जी ने भले ही कुकुरमुत्ता और गुलाब जैसी कवितायें लिखीं हों, लेकिन किसी ने उन्हें प्रगतिवादी कवि नहीं कहा, वे मूलतः छायावादी कवि ही कहे गये। चार छः नये कवियों के गीतों को उद्धृत कर जो मूलतः नयी कविता के कवि हैं, नवगीत का मूल्यांकन करना, एक तमाशा नहीं तो और क्या है। ये तो केवल नवगीत में ट्रेसपासर्स या घुसपैठिये के रूप में आये। पटवारियों ने अकारण ही इनके नाम नवगीत का पट्टा कर दिया है।

सामान्यतः नवगीत का उत्स लोग निराला से तलाशते हैं। हर बड़े समर्थ कवि में आनेवाली धाराओं के बीज होते हैं। लेकिन मात्र इतने से नवगीत की शुरूआत निराला जी से खोजना, एक ऐसी आर्यसमाजी पुराण-पंथी जहनियत है, जो हर चीज का उत्स वेद अथवा भारत में खोजती है।

नवगीत के सन्दर्भ में जागरूक रचनाधर्मिता को जन्मत्वरा सन् '५८ के आस-पास से ही मिली है। यही एक वास्तविकता है, जिसे निराला जी के प्रति पूर्ण आदर भाव रखते हुए मैं मानता हूं।

अन्त में एक बात और। नवगीतकार कवि-सम्मेलन के मंच से परहेज करता है। आप कहेंगे कि क्या जनता से मुखातिब होने का एक ही माध्यम कवि सम्मेलन का मंच है, मैं सविनय कहूंगा, जी नहीं और भी हैं, लेकिन मैं नहीं समझ पाया कि रचनाकार के नाते हमने ऐसा क्या चुराया है या अपराध कर बैठे हैं जो हम जनता से मुंह चुरायें। कवि सम्मेलन एक ऐसी संस्था रही है, जिसे पुनर्गठन की अपेक्षा है। मैं नहीं चाहता कि कवि-सम्मेलन का मंच कव्वालों, सरकस वालों या जोकरों के लिये छोड़ दिया जाय। कालजयी रचनाकार, जो काल से नहीं डरता वह भला जनता से क्यों घबराये ? सम्प्रति इतना ही।

●

अधुनातन युगबोध का संवाहक	साम्प्रतिक संचेतना का संवाहक
संकेत	**सप्तांशु**
धीरेन्द्रनारायण सिंह द्वारा सम्पादित	सम्पादक : परमानन्द गुप्त
मुक्तचिंतन, मुरलीगंज,	सम्पर्क : ६, मानाक्षी कोइल
सहरसा (बिहार)	स्ट्रीट क्रॉस, बंगलोर—५१

नवगीत : संभावनाएँ

जगदीश विकल

'गीतांगिनी', के संपादन के द्वारा राजेन्द्र जी ने नवगीतकारों को दिशा संकेत तो दिया ही, उन्होंने अपनी नवगीत काव्य कृति में नए गीतकारों का घोषणा-पत्र भी प्रस्तुत कर दिया।

तो नवगीत अपनी तत्कालीन जीवन्त उपलब्धियों के बाद भी संभावनाशील ऐसी अकृत्रिम काव्य विधा है, जिसमें आज के काव्यात्मक संवेदना की ठीक तस्वीर खोजी जा सकती है। नवगीत की रचना-प्रक्रिया सन्दर्भगत आधुनिक ही नहीं अत्याधुनिक अनुभूतियों को आत्मसात कर सतत् गतिशील है। वह निरन्तर प्रामाणिक अनुभूति एवं तराशे गए स्वरूप की यात्रा पूरी कर रहा है। और अब उसकी निश्चित संभावना पर संशय की कोई रेखा या लकीर नहीं।" नवगीत गीत-तत्व से प्रभावित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आधुनिकरण का प्रवाहित एवं सत्य रूप है, जिसमें भोगने की प्रक्रिया के साथ-साथ अनुभूति एवं सत्य की प्रखरता एवं और महसूसे गए क्षणों का बिम्ब प्रधान होता है। भोगने की प्रक्रिया + सत्य की प्रखरता = महसूसे गए क्षण, महसूसे गए क्षण + अनुभूति = नवगीत " यह नवगीत की रचना प्रक्रिया है।...

नवगीत गीत-तत्व को नकारता नहीं, उसकी सहजता नवगीत के विकसित स्वरूप में स्वीकारता है। भावों की समग्रतः सम्प्रेषणीयता अभिव्यक्ति का चित्र बोध जहाँ प्रकट होता है, वहाँ नवगीत की परिसीमा है प्रामाणिक अनुभूति में भोगे गए यथार्थ को रागात्मक अभिव्यक्ति देना नवगीत की जीवन्त रचना प्रक्रिया की मूल सामर्थ्य शक्ति है।

यह सुखद बोध है कि जहाँ नीरज, देवराज दिनेश, रामानन्द दोषी, बालस्वरूप राही, रामअौतार त्यागी इत्यादि ने निराला की महती परम्परा को भंग कर गीतों को सस्ती भावुकता एवं रोमानियत से भरकर अर्थहीन

❀ लक्ष्मीकांत 'सरस'—सातवें दशक के उभरते नवगीतकार, खंड—२ का सम्पादकीय।

रचना धुंध को फैला दिया, वहाँ नवगीत के नए से नए हस्ताक्षर भी अपने को धुंध के व्यामोह से परित्यक्त कर नये गीतों से नवगीत को सार्थक अभिव्यक्ति-बोध दे रहा है।

नवगीत के मूल्यांकन के क्रम में मैं सहसूस करता हूँ कि अकृत्रिम कविता की खोज और सर्वथा प्रामाणिक एवं युगाभिव्यक्ति की विशुद्ध खोज एवं पहचान नवगीत के स्वरूप एवं पहचान से की जा सकती है, क्योंकि नवगीत ने परम्परागत छन्द, तुक, लय, यति, विराम इत्यादि परम्परागत रूढ़ियों को नकारकर अपने खास इंगित की गति-लय को नकारकर अपने खास इंगित की गति-लय को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है जिसमें मनः स्थिति का बिम्ब तक उभर आता है।

अब तक राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामनरेश पाठक, श्याम सुन्दर घोष, शलभ, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, नरेश सक्सेना, ओम प्रभाकर, उमाकान्त मालवीय, महेश्वर तिवारी, नईम, रवीन्द्र भ्रमर इत्यादि ने नवगीत को विशिष्टता का आयाम प्रदान किया है। फिलहाल नये गीतकारों का एक समूह समग्र आस्था से नवगीत की यात्रा में सचेष्ट हैं। वैसे तो अनेक नाम हैं, जो नवगीत की रचना प्रक्रिया को बिगाड़ रहे हैं, लेकिन लक्ष्मीकान्त सरस नामवर बामरतन, नीरव, शान्ति सुमन, सत्यनारायण, रमेश गुप्त, सुधा गुप्ता श्रीकान्त पाण्डेय प्रसून एवं नचिकेता इत्यादि ऐसे अर्थपूर्ण नवगीतकार हैं, जिनकी रचनाओं में नवगीत की संभावना समग्रतः ध्वनित हो रही है।

वस्तुतः नवगीत आंदोलन नहीं, नये गीत का ऐसा अभियान है, जिसके मूल में अत्याधुनिक अनुभूतियाँ हैं। नवगीत के अभियान में सम्पूर्णतः आधुनिकता की गतिशीलता है। वह जीवन के अतिरिक्त एवं वाह्य किसी भी विन्दु से कटा हुआ नहीं। नवगीत युग बोध की अब एक सशक्त-विधा है।

★

नवगीत

□ राजेन्द्र प्रसाद सिंह

भरी सड़क पर
कुमकुमे जले हैं,
कोई सुई हम
ढूँढ़ने चले हैं !
गुजर गये हैं जो धूल के वगूले,
सिकुड़ गये जो दीवार के फफोले;
कौन उनके लिए चुका रहे ?
कई बरस ये
कलेन्डर खले हैं !
कोई घड़ी हम
ढूँढ़ने चले हैं !
गले-गले यह जंजोर जो बँधी है,
गठरी गूदड़ की, पीठ पर लदी है—
कौन इनको लिये झुका रहे ?
हथेलियों पर
आइने ढले हैं,
कुतुबनुमा हम
ढूँढ़ने चले हैं !
न साथ देंगे जो पैर, आँखवाले,
कटे रहेंगे जो हाथ, पाँखवाले;
कौन उनके लिए रुका रहे ?
सवारियों के
मोल-दर खुले हैं,
कोई मुहर हम
ढूँढ़ने चले है !

□

निर्वासित

□ शम्भुनाथ सिंह

भागता हुआ कहाँ-कहाँ
मैं ने क्या-क्या नहीं सहा !

जीवन भर आत्म-अन्ध सा
लड़ता आया कबन्ध सा,
आगे ही खींचता रहा
कौन चुम्बकीय गन्ध सा ?
तट को छूती धारा सा
अर्थहीन मैं सदा बहा !

कन्धों पर कोड़े बरसा
कोई आकाश से हँसा
जिस पथ पर भी कदम बढ़े
साँपों ने पाँव में डँसा।
हँस-हँस कर झेल ली लहर
मुँह से कुछ भी नहीं कहा।

हो गये धुँआ-धुँआ दिये
मिट गये तमाम हाशिये
रोशनी शहीद हो गयी
सिर्फ अन्धकार के लिए।
रह गयी बहार अनसुनी
रह गया वसन्त अनकहा !

सुख से सन्यास ले लिया
दुख को वनवास दे लिया,
बार-बार क्रास पर चढ़ा
जाने कितना जहर पिया !
शेष आत्म दान के लिए
अब तो कुछ भी नही रहा !

□

नवगीत

□ ओम प्रभाकर

यह पथ अब छोड़ दें !

खेत : वही बंजर-सुनसान
रेत हुए ताल।
भूखे-प्यासे मकान
गिरते-गिरते अकाल ॥
इनसे होकर जाता
यह रथ अंतराल अब ताड़ दें
अंधी होती आँखें खुली हुई।
टूटती हुई पाँखें उड़ने को तुली हुई ॥
देखें या अश्वों को अन्य दिशा मोड़ दें !

जा बैठें
कहीं किसी कोने में
अपनी यात्राएँ लिए।
मौन-पराजित-इच्छाहीन
साँस बंद किए ॥
और, शेष इन लोहित निमिषों में
अपने अन्तर का घन अंधकार जोड़ दें !

□

कथाक्रम

□ रमेश रंजक

कुछ दिनों पहले
शीशे में हीरे का भ्रम था
अच्छा ही हुआ उसे तोड़ दिया
यह भी तो एक कथाक्रम था
कुछ दिनों पहले

घुटनों जल की लहरों का नशा
बचपन-सा सो गया
गहरे इतिहास के समुन्दर में
खो गया
अच्छा ही हुआ
दो भूरे बालों के जन्म-दिन
जितना जो डूब गया उतना ही
अर्थहीन श्रम था
कुछ दिनों पहले

मोसम के आँधी-पानी
दुश्मन हैं धूल के
कच्चे भूगोल के समीक्षक हैं
पक्के हैं ये उसूल के
अच्छा ही हुआ
छूट गया राह में कहीं
जो मुर्दा शब्दों को ढोता था
राजा विक्रम था
कुछ दिनों पहले

□

नवगीत

□ शान्ति सुमन

सुबह-सुबह उठकर
आँखें टँग जातीं नारों से—
रँगी दीवारों पर।

खतम चुनावों के दौरे
फिर लोग थके हारे
सड़कें स्याह हुईं, पिघलीं—
गम-डूबे गलियारे
बिलावजह जीकर
जाते ही खो गये भीड़ से—
धुने कगारों पर।

कौन कहेगा दर्द किसी
खुशबू के भीतर का
सोना बिका उधार—
मोह गहनाया पीतर का
इसी तरह मरकर
धूसर वृक्ष हुआ धूलों से—
सने पहाड़ों पर।

सूरज ने जल सोख लिये
नदियाँ गढ़तीं धोखे
सावन का रथ रुका रहा—
गुजरा न इधर हो के
लहरों में बहकर
कोई शंख इधर आ जाता
भरे किनारों पर।

□

आदम का जंगल

□ भगवानस्वरूप 'सरस'

टूटी हुई हड्डियों पर
लटका है अधर महल
ताले बन्द—
चाभियाँ गुम
भीतर भीतर हलचल
• तपती लाल शलाखों पर
चिपके अधमरे उसूल
आस्था का आधार चीरकर
उगे असंख्य बबूल
चौतरफा उठ रही मरघटी गंध
कि जैसे—
एक साथ सुलगा हो कोई
आदम का जंगल
•• मष्तिस्कों में सांप
पीठ पर बर्रों के छत्ते
पावों तले रेंगते बिच्छू
हम बिखरे पत्ते
सारे अंक मिटे हिसाब के
दृष्टि-दृष्टि विभ्रान्त
न मिलता
ढूंढ़े कोई हल
••• सिंहासन धँस रहा अतल में
बुझी विवेक मशाल
वैकल्पिक सूरज पर छाया
कुहरे का भ्रमजाल
चटकी हुई नसों से
रिसता पीव
आँख में काले जल का ताल
ताल में
सड़ते हुये कमल

□

टंगे प्रश्न

□ रघुनाथ प्रसाद घोष

प्रश्न कई गुमसुम-से
टंगे हुए
नजरों की डाल पर !
धुंध में बहुत गहरे
डूब गईं उमसती दिशाएं
बुझी हुई आकृतियाँ
चुपके से आलपिन चुभाएं
सन्नाटा पसरा है
हवा पड़ी मनमारे
थकी हुई सांसों में ताल भर !
अजनबी हुए परिचय
रिसते अहसास में कंपसते-से
मरे-मरे-से चेहरे
खंडहर की खबरें उगलते-से.
ऊँगली में फँसा हुआ ऊँधियारा
खींचता लकीर कई अनचीन्हा
चिपकी-सी खाल पर !

□

दोपहरी जून की···

□ लक्ष्मीकान्त 'सरस'

सूखे हुए कपड़ों पर टंगी हुयी
दोपहरी जून की
जैसे गांव की दूकान हो सूनी
परचून की ।
रह-रह कर रोम-रोम पसीजते
दो-पाये खीझ मात्र छेरते
नल की टोंटी से सम्बन्ध जोड़
बर्तनों में ऐठती हवाएं,
बातों की थपकियों से बरबस
वृत्तियां सिमटती नाखून की ।
तारकोली सड़कों पर उभरते
टायर से घिसटते फैलाव
मजबूरी उफनती बाजारों में
सिक्कों के हांफते खिचाव
दफ्तरों में उंगलियों से सरकती--
पत्रों पर छाप मजमून की ।
दोहे, चौपाई से लगते फुटपाथ
प्रणय गीत से लगते होटलों के द्वार
लोक-कथा सी लगती पार्क की उदासी
कालेज के गेटों पर टंगी है फंतासी
बच्चों का रोना और हंसना
गति है निराले कानून की
सूखे हुए कपड़ों पर टंगी हुयी
दोपहरी जून की ।

□

नवगीत

□ सुरेन्द्र कुमार काले

बांधो इन्हें किसी रेखा से
कहीं टूट मत जाएँ
ये अनजान हवाएँ ।
ठौर-ठिकाने
कोर-बहाने,
मन की बातें
मौसम जाने ।
आधे और अधलिखे खत सी
कब से पड़ी दिशाएँ ।
एक हाथ रस्ते-चौरस्ते
एक हाथ में
नाम वो पते
यादों के इस दूर देश में
क्या छोड़ें
क्या गाएं ।

□

इतनी-सी बात

□ नचिकेता

बात इतनी-सी हुई
भीड़-भाड़, भाग-दौड़
मंत्र हो गये
सारे सम्बन्ध
महायंत्र हो गये
कड़ुआयी आँखों में तैर गयी
श्वेत रूई
पोर-पोर सुन्न हुए
दृष्टि उठी जल
पलकों पर प्रश्न लिपे
जीभ पर गरल
टूटे संकल्पों की धुंध रही
अन छुई
चीख ओढ़ होठों पर
सो रहा नगर
सड़कें अखबार
हवा बांटती
खबर
बिंध गयी उंगलियों के कम्पन में
तीक्ष्ण सुई

□

पतंग से भविष्य

□ कैलाश गौतम

आये जाये कोई त्योहार के निहोरे
जैसे बयार कभी ठूँठ को झकोरे ।।
उलझी पतंग-से भविष्य झेलता
वर्तमान कुएँ पर बच्चा खेलता
क्या कहूँ अतीत जूते छोटे हो गये
रिश्ते जैसे कन्धे रस्सी-लोटे हो गये
मन मेरा और कहीं और कहीं मैं
जैसे खलिहान कोई लड़की अगोरे ।।
मिलते हैं पथ जैसे लकड़ी गुलेल की
घर की सहानुभूति खिड़की है जेल की
जी रहा हूँ जिन्दगी में बिखरे जुलूस की
चोरी गये कम्बल की रात माघ पूस की
गूलर के फूल हुए झरते दुलार-दिन
और भरे-भरे कच्चे दूध के कटोरे ।।
ऐसे में दिन का अनुमान क्या करूँ
बादल में मेरा विनमान क्या करूँ
जमीन नहीं अपनी दिशाएँ नहीं अपनी
कैसे भला साँस लूँ हवाएँ नहीं अपनी
पिंजड़े का मोह सिर्फ़ जान ले रहा है
ढूँढ़ रहा मुक्ति-द्वार पंख को बटोरे ।।

⊡

सुबह

□ जुगमंदिर तायल

सुबह-सुबह जल्दी घर से निकलना ।
खामोशी के सागर में तैरते बढ़ना ।।
बिजली के खम्भे खामोश खड़े
रात के पहरेदार ।
दूर मन्दिर से आरती की गूंज
आती है बार-बार ।
धीरे-धीरे जबड़े चलाती गाय एक
बैठी अँधेरे में
रोशनी का इन्तजार ।
कुत्ते बैठें हैं जगह-जगह रास्ते में
कान उठाये जागरूक
शेष अभी अंधकार ।
अँधेरे को चीरता ट्रक एक
घर से निकल गया ।
जल्दी उठकर पढ़ने का
होस्टल में घंटा बज गया ।

पार्क में
घास के मैदानों में हलचल
बूढ़ों का शिकायत-खाता खुल गया
दौड़ के मैदान में
जवान पिंडलियों में हरकत
उग रहा एक और दिन नया ।
सुबह-सुबह जल्दी घर से निकलना
आसमान से उतरती
सब कुछ को उजागर करती
धुली रोशनी में लौटना ।

□

नवगीत

□ प्रीतम सिंह बागरेचा

मन के खिड़की दरवाजे खोलें
हँस-रो हल्का करें हृदय, बोलें

(१)

धुआँ इकट्ठा हुआ बहुत अन्दर
आओ बैठें, हम कुछ बात करें
एक दूसरे पर मुँह बिचकायें
चिढ़ा-चिढ़ाकर हम आघात करें
एक दूसरे की खोलें पोलें
बिल्कुल बच्चों से हल्के होलें

(२)

मन के ये संवाद अधूरे है
जाने कितनी सदियाँ बीत गईं
हम-तुम बैठे नहीं तसल्ली से
कई बदलियाँ आईं, रीत गईं
हरे लॉन की घास तोड़ते हम
पवन हिन्दोले खायें हिचकोले

(३)

उम्र बीतते गेहूँ बीत गई (तुम्हारी)
पोथी पढ़-पढ़ मैं बर्बाद हुआ
अकड़-अकड़ में तुमने मन झकड़ा
मुझ से भी क्या-क्या अपराध हुआ
सारा मन भर गया फफोलों से
आओ इस पर प्रेमामृत ढोलें

□

रिश्तों के नाम

□ कृष्ण कमलेश

रिश्तों के नाम पर कीमतें वसूलें ।
.....
जब जब व्यापार किया,
मिला बहुत घाटा ।
चुम्बन के नाम पर
मिला सिर्फ चाँटा !
क्या सहलायें गाल, सीवने उधेड़ें
प्रेमिक हो
जैसे कुत्ता पालतू ।
'प्यार' लफ्ज
हो गया फालतू ।
उसूलों की जिन्दा सलीबों पर झूलें ।
रिश्तों.....

□

ओ प्रतीक्षित : बिम्ब की पहचान

□ ओम प्रभाकर

'.....मेरे ये गीत भाव-भीगे क्षणों के, हल्के-फुल्के और भारी-भरकम क्षणों के गीत... इनमें मध्यवर्गीय भाव-चेतना का उतार-चढ़ाव आपको यत्र-तत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध.....इन नव-गीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुण्ठा, घुटन, पीड़ा, विवशता एवं शैथिल्य है अपितु हृदय और बुद्धि का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बंटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी हैं..... इन गीतों में कहीं-कहीं आपको बिखराव भी मिलेगा... परिस्थितियों के साथ बरबस समझौता करने की मजबूरी मेरे गीतों में आप पाएंगे.....मन ही ऐसा मिला है कि अवसाद का एक घना कुहासा इर्द-गिर्द व्यापा ही रहता है .....मानसिक संघर्ष जो मेरे जीवन का सच है, मेरे गीतों का भी सच.....

यदि कोई रचनाकार अपनी कृति के सम्बन्ध में इतना-कुछ कृति के पहले ही कह दे, तब फिर किसी और के—जिसे पाठक या समीक्षक कहते है, उसके—कहने के लिए कुछ विशेष नहीं रहता ।

'ओ प्रतीक्षित' की कवयित्री शांति सुमन ने अपने नवगीत-संग्रह के 'पुरोवचन' में गीत, नई कविता और नवगीत को लेकर जो कहा है : संकलित अपने नवगीतों की वस्तु और शिल्प के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ कहा । इस प्रकार के पुरावचनों से कविताओं को समझने में सामान्य पाठक को यदि एक ओर कुछ 'लाइन्स' मिल जाती हैं तो दूसरी ओर समीक्षक के रास्ते में एक 'लाइन' आ जाती है जो कृति से उसका सीधा सम्पर्क नहीं होने देती । या समीक्षक वह नहीं कर पाता जिसे डा० इन्द्रनाथ मदान 'रचना की राह से गुजरना' कहते हैं । और फिर ऐसी स्थिति में, समीक्षक को या तो कवि की दी हुई लाइन्स पर चलना होता है, लेकिन वैसा करना सही समीक्षा करना नहीं होता, : या फिर कवि-प्रदत्त लाइन्स को स्थगित करके रचना की राह से गुजर कर ही देखना होता है कि रचना कहां जाती है और पाठक-समीक्षक को कहां ले जाती है । अस्तु ।

शांति सुमन हिन्दी जगत में ख्याति और प्रतिष्ठा की दृष्टि से कितनी ही नई हों, रचनाकारिता की दृष्टि से उतनी नई नहीं हैं । 'आधुनिक हिन्दी

कविता में मध्यवर्गीय भाव-चेतना' विषय पर जहां वे पी-एच० डी० की शोध-उपाधि प्राप्त कर चुकी हैं वहीं 'चेहरे का झूठ' तथा 'सम्प्रति' नामक उनके नयी कविता संग्रह और 'गूंज-अनुगूंज' मैथिली गीतों का संग्रह भी प्रकाश्य हैं। तो चार पुस्तकें जब शांति सुमन की छपने वाली हैं तब मैं यह मानकर चलता हूं कि दो-एक पाण्डुलिपियां उनके पास और होंगी। मतलब यह कि कितनी कम वय में इतने प्रचुर लेखन (विशेषत: काव्य) का कृतिकार यदि कृति की किसी अनिवार्य शर्त को नहीं मानता तो माना जा सकता है कि उसने जानबूझ कर ही ऐसा किया है। 'ओ प्रतीक्षित' के लगभग सभी गीतों में छंद की जो शिथिलता या अवज्ञा व्याप्त है, उसे मैं इसी रोशनी में लेता हूं। और स्वयं कवयित्री ने भी कहा है कि उसके निकट शिल्प की अपेक्षा वस्तु अधिक महत्वपूर्ण है।

और जब (नव हो प्राचीन) गीत में से छंद निकाल दिया जाय तो कहने को क्या रह जाता है:—गीत की वस्तु और उसके बिम्ब, प्रतीक तथा उपमान!

तो यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि शांति सुमन के इस संकलन में अनेकानेक हसीन, सजीव, सार्थक और ताजातरीन बिम्ब और उपमान भरे पड़े हैं।

कवयित्री द्वारा प्रकृति के गहन पर्यवेक्षण के जानदार बिम्ब 'कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर', 'नील-जमुनी सांझ कुछ और पिरा गई', 'ज्वार पर कोई किरण का फूल', 'पंखुरियों के मेघ और यह सित परिवा का लुकता-छिपता चांद',

विवश मन: स्थिति का प्रवक्ता बिम्ब :

'एक विराट हिमालय रखकर
पीड़ा के सब आवेगों पर ...'

प्रकृति से गहन आत्मीयता के संसर्ग में निजी पीड़ा का बिम्ब :

'यहीं कहीं संझा मुरझेगी'

शाम के धूसर क्षणों में स्मृतियों का किसी मन-कान्तार में आ-आकर ठहरना और शांति सुमन का यह बिम्ब :

'उड़ती अंधेरे बैलगाड़ी की धूल'
उड़ती लेकिन ठहरी हुई लगती जैसे मन के भीतर
एक पर स्मृति उड़ती मगर वहीं ठहरी रहती।

.... आशय यह कि 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों में बिम्बों—ताजे और जीवंत, जीवंत और अनुभूति विशेष के समर्थ संवाहक, बिम्बों, प्रतीकों और उपमानों की कतई कमी नहीं है। कवयित्री में—जो कि उसके इन गीतों से साफ-साफ जाहिर है—एक बेहद वेगवती—अप्रतिहत तड़प है: अनुभूति को व्यक्त करने की: अनुभूति विशेष के व्यक्तीकरण के साथ कुछ अछता प्रस्तुत करने की और किसी अभुक्त को उद्घाटित करने की।

यह एक अलग बात है कि 'ओ प्रतीक्षित' में शांति सुमन के गीतों में व्यक्त उनक अनुभव निश्चित हैं—निश्चित और सीमित: मोटे तौर पर मात्र दो—प्रेम और समकालीन जीवन। लेकिन इन दो अनुभव-वर्गों के अतिरिक्त जीवन-जगत और है क्या? प्रतीक्षा, प्रणयाकुलता, प्रकृति की सुन्दरता, सम्भोगाकांक्षा, तदुपरांत विरक्ति, ऊब, बेचैनी, छटपटाहट, ग्लानि, समकालीन जीवन का अकेलापन, अजनबीयत, अरक्षा-भाव, कुन्ठा, आशंका: रचनाकारोचित स्वतंत्रता के परिवेश के दबाव से पराजित होने की विवशता: सामाजिक रूढ़ियों—विवाह, पति, गृहस्थी आदि को स्वीकृति देने की विवशता, परिवेश की विडम्बना को स्वयं भोगने की विवशता, अपने माध्यम से आज के आदमी की लुप्त होती मौलिकता या अस्तित्वहीन होते जाने की विवशता .....

मतलब यह कि जीवनानुभवों के विविध पक्ष, उनकी अनेक शेड्स शांति सुमन ने इन गीतों में पर्याप्त कलात्मकता के साथ उजागर की हैं।

फिर भी, एक बात मैं लाख न चाहने पर भी, कहने को विवश हूं: कि जिस प्रकार अनेक गुणों के रहते या न रहने कविता को अन्तत: कविता तो होना ही चाहिए उसी तरह गीत अन्तत: गीत ही रहेगा। कविता कभी बयान, नीति-वचन, सूक्ति, दृष्टांत और विट मात्र होकर जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार लय और शैलिक अनुशासन से रहित होकर गीत—कुछ भी और कैसा भी हो सकता है—गीत नहीं रह सकता: नव और प्राचीन की तो बात ही अलग है। ऐसी मेरी मान्यता है निजी।

और इसके अतिरिक्त शांति सुमन को एक बात पर और ध्यान देना होगा (टोन के लिए क्षमा करें!) और वह है उनकी भाषा! उनके गद्य में तो ठीक लेकिन कविताओं में जाने-अनजाने वे अनेक स्थलों पर जब आंचलिक (शब्द-प्रयोग में नहीं वाक्य-व्याकरण की दृष्टि से) हो जाती हैं तब अर्थ या तो लटपटा जाता है या अटपटा हो जाता है।

फिर भी मुझे उनके इस संग्रह के गीत रुचिकर हुए।

□

ओ प्रतीक्षित : एहसास की सच्चाई

□ डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

आज की जिन्दगी की तमाम उपलब्धियों और विसंगतियों के साथ नवगीत ने संवेदनशीलता को भी अपने साथ सँजोकर रखा है। नवगीतकार की संवेदना को किसी क्षण की तल्ख हकीकत कुरेद जाती है और कभी वह अपनी संवेदना के सहारे ही समकालीन जिन्दगी के किसी एक आयाम का लेखा-जोखा करने लगता है। इसलिए नवगीत में जीवन की जटिलताओं और उलझी हुई मनस्थितियों के साथ मुक्त क्षण का आभोग भी जब-तब झलमलाने लगता है। उसकी मनोदशा ऐसे व्यक्ति की होती है जो जार में तैरती हुई रंगीन मछलियों के सौन्दर्य का भोक्ता होकर भी चारों ओर के घुटन भरे माहौल की तीक्ष्णता का भी अहसास निरन्तर कर रहा है। इसलिए नवगीतकार अन्यों की अपेक्षा अधिक ईमानदार है। वह जिन्दगी के प्रत्येक क्षण के आमने-सामने है। वहाँ अपनी जिन्दगी और अपनी जुबान है, लेकिन इतनी कोमल कि हल्की सी खरोंच लगने पर भी तिलमिला उठे।

'ओ प्रतीक्षित' ऐसा संग्रह है जो नवगीत के अनुभूत्यात्मक संदर्भ को पूर्ण विश्वसनीयता के साथ फैलाता है। इसमें समकालीन मध्यवर्ग की रिक्तता, तनाव, अकेलापन, बेपनाही, खीझ, उदासी, थकान, तिलमिलाहट, बेचैनी, बदहवासी, टूटन, बिखराव और निरुपाय विद्रोह के साथ उल्लास, उन्मुक्तता तथा रोमानियत के दायरे में सिमट जानेवाला क्षण का मुक्त आभोग भी है। शान्ति सुमन के ये गीत केवल नवइयत की तलाश के लिए ही नहीं लिखे गये हैं, बल्कि ये मध्यवर्ग की समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज हैं। नयी कविता में जिन्दगी की बेचैनी बड़ी तल्खी से उभरती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि परखनली की इयत्ता उफनते हुए रासायनिक द्रव को सँभाल नहीं पाती और काँपते हाथों से छूट कर द्रव समेत परखनली ही फर्श पर गिर कर चकनाचूर हो जाती है और एक तीखी गंध हवा में टंग जाती है। लेकिन नवगीत को अभी ऐसे खतरे से गुजरना नहीं पड़ा है। अर्से से गीत की संरचना का केन्द्रबिन्दु कोई संवेदना होती चली आई है और नवगीत ने भी इस धरोहर को संजोकर रखा है। इसलिए नवगीत में समसामयिक जीवन की विश्वसनीयता अपने सम्पूर्ण परिवेश

दिखाई पड़ती है। नई कविता में कई क्षणों के अलग-अलग बिम्ब अथवा मनस्थितियाँ बया के घोंसले की तरह अलग-अलग लटकी दिखाई पड़ेंगी, किन्तु नवगीत किसी एक ही क्षण की मनस्थिति से बँधा रहता है। उसमें एक सम्पूर्ण बिम्ब इसलिए आकार ग्रहण करता है कि क्षण विशेष के संवेग की संश्लिष्टता ही रीढ़ हुआ करती है। उसमें प्रभावान्विति भी इसलिए तीव्र होती है। वह किसी एक विन्दु को ही उसकी समग्रता के साथ पकड़ता है। इस तरह नवगीत का रूप-गठन लगभग वही है जो एक बहुत अच्छे गीत का शिल्प करता है। थोड़ा सा फर्क लयात्मक संधान में अवश्य आया है। लेकिन तबदीली का अधिक अहसास उसके कथ्य को देखने से होता है।

शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' को पढ़ने के बाद नवगीत का वह पक्ष उभरता है जो नयी संवेदनाओं को बतौर हिस्सेदारी के इस तरह लय-बद्ध करता है कि वह व्यापक मानव-बोध का साफ-सुथरा आईना बन सके। दो प्राणियों के बीच 'दूरी को पाटने वाली' आदिम संवेदना के कुछ ऐसे भी गीत इस संग्रह में है, जिन्हें देखकर नवगीत के बारे में एक विशेष प्रकार की धारणा रखने वालों को तिलमिलाहट हो सकती है। इन लोगों को नवइयत के टेम्परेचर में 'मुक्त क्षण का आभोग' असहनीय प्रतीत होने लगता है। वे भूल जाते हैं कि अपने परिवेश के दबाव में जकड़कर भी कुछ व्यक्तित्व इसलिए नहीं चिटक पाते कि मानव का मूल-स्वर उनके रंध्रों में बाँसुरी सा गूंजता रहता है। शान्ति सुमन ने आज की जिन्दगी के बाहरी दबाव और अन्दरूनी उलझनों की घेरेबन्दी से जब तब अपने को मुक्त पाया है। जीवन के प्रति उनका जितना भी है, बहुत साफ और सुलझा हुआ विचार है।

शान्ति सुमन के गीतों में भावात्मकता बराबर अनाहत रूप से विद्यमान मिलती है, किन्तु उनकी भावुकता में एक ओर निर्बाध मुक्तावस्था है तो दूसरी ओर पीड़ा और घुटन। वे प्रतिदिन के दबावों से मिले हुए दर्द को यथार्थ की सतह पर झेलती हैं, किन्तु लय संधान में भावात्मकता सघन हो जाती है। पुराना गीतकार किसी भावुक क्षण को पकड़कर अपनी पूरी भावात्मकता के साथ गीत की रचना किया करता था। गीत-विद्ध क्षण में यथार्थ से वह कोसों दूर रहा करता था। असीम भावुकता और तदनुकूल अबाध कल्पना गीत की शर्त हुआ करती थी किन्तु नवगीतकार अपने गीतों को जीवन की कड़ुई और मीठी सच्चाईयों का हिस्सेदार साबित करता है। इस तरह सही माने में 'ओ प्रतीक्षित' के गीत जिन्दगी से हिस्सेदारी के गीत हैं। वस्तुतः

जिन्दगी की सही माने में हिस्सेदारी रचनात्मक धरातल पर करते समय कभी बड़बोलेपन का खतरा रहता है और कभी सिद्धान्तीकरण का। नयी कविता में ये दोनों खतरे अपनी कारगुजारी दिखाते हुए आईने से साफ नजर आते हैं। शान्ति सुमन के इन गीतों में या तो यथार्थ के फलक पर संवेदना का चटकीला रंग उभरता है अथवा संवेदनशील क्षणों में यथार्थ चुभ गया है, इसलिए बड़बोलेपन की गुंजाइश नहीं है। इसी तरह संवेदनीयता सिद्धान्त-सृजन के लिये अवकाश नहीं देती। जहाँ कुंठित सिद्धार्थ की फलश्रुति बुद्ध में होती है, कुंठा के ऐसे रचनात्मक पथ को सामने रखते समय भी सिद्धान्ती-करण का खतरा बड़े ढंग से बचा लिया जाता है।

पीड़ा का क्या न यह नया अर्थ,
कुंठित गौतम का बनना सिद्धार्थ।

शहरों का मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी तनाव और बेपनाही में जी रहा है। संत्रास, विज्ञापन, भीड़ और अर्थ-शून्य आकर्षण के बीच जीनेवाले शहरी व्यक्ति के लिये पल भर की इनकी अनुपस्थिति अच्छी लगने लगती है :

अस्थिर मन सुनता जब अच्छी खबर,
थोड़ा सा रुचने लगता है शहर।

इस समूचे गीत का रूप-गठन इतना सजग होकर किया गया है कि प्रभावान्विति काफी सघन हो जाती है। अच्छी खबर सुनकर शहर का अच्छा लगना, जैसे शीर्षक है। इसके बाद आगे टेक के रूप में दो-दो पंक्तियों में विज्ञापन, भीड़, सूनापन और मृगतृष्णा की बात कही गई है। तीनों क्रमशः प्रदर्शन, व्यक्तित्व-शून्यता और भटकाव के संकेतक हैं। क्रमशः तीव्रता प्रगट की गई है। पहली का परिणाम दूसरी और दूसरी का परिणाम तीसरी अवस्था कही जा सकती है। शहरी आदमी रिक्त होकर केवल प्रदर्शन जीवी बना अपनी निजता को खोकर भीड़ बन गया है। उसकी उपलब्धि के आगे निरुद्देश्य भटकाव है। उसे यह भी नहीं पता कि किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वह तपन में दौड़ रहा है। गीत में चार-चार पंक्तियों के तीन टुकड़े हैं। पहली में बेपर्द, निरुद्देश्य, भटकी दृष्टि द्वारा पूर्ण मर्यादित गाँव को निगल जाना, दूसरे में कमल-वन का सितुही पोखर बनकर देखते ही देखते सबेरे का उड़ जाना और तीसरे में सारी की सारी स्थितियों का विषम होना क्रमशः व्यक्त है। इनका व्यंग्यार्थ सहज मर्यादित जीवन की समाप्ति, सौन्दर्य के प्रतिमान के टूटने से भविष्य का अवरोध तथा निरन्तर की पीड़ा

और कुंठा से जीवन की समग्रता की दुर्वह स्थिति है। दूसरे टुकड़े की इन पंक्तियों में चरमोत्कर्ष है :

अपना कमल-वन बना सितुही पोखर,
उजड़ गया देखते ही देखते सबेर।

इन पंक्तियों के पहले बिजली के द्वारा तेल के दिये को सोखना और मुंडेरों द्वारा छाजन का उड़ाया जाना आया है। बिजली वैज्ञानिक या यो कहें कि यांत्रिक जीवन और तेल का दिया तरल, पारम्परिक और सहज जीवन का प्रतीक है। फूस की छाजन प्रकृति के साहचर्य और जीवन की अकृत्रिमता तथा मुंडेर बनावटी और कठोर ऊँचाइयों का संकेतक है। इस सांकेतिकता के बाद आई हुई अपर की पंक्तियाँ—'अपना कमल-वन'···गीत की संवेदना को चरमबिन्दु तक पहुँचा देती हैं। कमल वन की सितुही पोखर में तब्दीली और सुबह के उजड़ जाने के बाद निजता, चेतना और संरचना-विहीन भीड़ की जिन्दगी ही नियति बन जाती है। चूंकि केवल तीन खंडों में विभक्त करके अपनी अनुभूति को संक्षेप में कहना है, इसलिए गीतकार ने बंद की प्रायः प्रत्येक पंक्ति में प्रतीकों को सँजोया है—कच्ची टेढ़ी पगडंडी, कमल-वन, सितुही पोखर, सबेर, धूप और धुआँ। ये एक ओर परिवेश के घटक हैं और दूसरी तरफ इनमें व्यंग्यार्थ भी हैं। शान्ति सुमन के शिल्प की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे प्रस्तुत के चयन में ही संकेत गर्भित कर देती है। ऊपर से देखने पर एक बिम्ब उभरता है, लेकिन जरा सा संकेत पकड़िये कि एक अन्य बिम्ब भी उससे लिपटा हुआ खुलने लगेगा :

सहजन की डाल टंगा सूख रहा जाल,
ऐसे में बतियाना करता बेहाल।

सरसरी निगाह से देखने पर पतझर के मौसम में सहजन की नंगी बाँहों में टंगा जाल और उदास वातावरण की बेचैनी का अहसास होता है, किन्तु इसके बाद अप्रस्तुत 'गिरे-गिरे केशों सी पत्तों की छाँह' से बरबस पहले की पंक्तियों में लिपटा एक और बिम्ब—हाथों में उलझा हुआ सूखता बाल—खुल जाता है। अब सेमल और जाल की अर्थवत्ता सघन हो जाती है। इसी तरह आगे बाँसों की फुनगी पर धूप का बैठना, बादल द्वारा कोहबर का पान खाना और गोखरू चुभाना भी नया अर्थ देता है। बाँसों की फुनगी पर धूप की उपस्थिति दिखाने के बाद ही बादलों को कोहबर का पान खाते हुए कहा गया

है। सतही तौर से देखें तो असंगति और जरा गौर कीजिये तो आसमान के एक कोना में धूप के कारण चमकदार कोरवाला बादल का टुकड़ा तैरता हुआ दिखाई पड़ेगा। इस तरह चाहे किसी अनुभूति की भवनता अथवा बिम्ब की तीक्ष्णता को व्यंजित करना हो, शान्ति सुमन उसकी समग्र और संक्षिप्त अभिव्यक्ति करती हैं और इसीसे उनके गीतों में संस्पर्शिता अधिक होती है।

'ओ प्रतीक्षित' में दो प्रकार की संवेदनाएँ हैं—एक तो युग की और दूसरे व्यक्ति की। यहाँ व्यक्ति की निजी विवशता और पीड़ा ही युग की अनुभूति बन गई है। युग के दर्द को झेलते हुए असलियत को पूरी विश्वसनीयता के साथ कहने पर समकालीन जिन्दगी की संवेदना के लिए भटकना नहीं पड़ता। शांति सुमन जी ने समसामयिकता की असलियत को बिना नमक-मिर्च लगाये कहा है, इसलिये सही माने में वे युग की पीड़ा को पहचानकर कह सकी हैं। यहाँ उनका निजी अहसास समाज की समकालीन जिन्दगी का दस्तावेज बन गया है। 'ओ प्रतीक्षित' में जिसे मैं व्यक्ति की संवेदना कहता हूँ, वह भी दो प्रकार की है--एक तो मुक्त क्षण का आभोग यानी 'आदिम रस गंधों' के बीच हम मुक्त होकर तैरने लगते हैं और दूसरी वे मनस्थितियाँ जो मध्यवर्ग की शहरी घातें झेलतीं हैं। शांति सुमन जी नारी हैं, इसलिए उनकी संवेदना अन्य नवगीतकारों की अपेक्षा अधिक तरल है। किन्तु वे पुराने गीतकारों के समान भावुकता के वेग में बहतीं नहीं, धीरे-धीरे लहरें केवल पाँव पखारतीं हैं।

शहरी जीवन पर इधर काफी लिखा गया और उसका एक सधा मुहावरा भी बन गया है। इसलिए जब नवगीतकार बंद, घेराव, प्रदर्शन और फाइलों से रुँधी हुई जिन्दगी की बात करने लगता है तो विश्वसनीयता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। भीड़ और कोलाहल से अभी तक दूर रहने वाली व्यक्ति-निष्ठ गीत-विधा भीड़ और कोलाहल की असलियत को कहाँ तक व्यक्त कर पायेगी, यह सवाल गीतकार की काव्य-क्षमता से जुड़ा हुआ है। एक जन-समूह का संत्रास या बिखराव भी गीत का विषय बन सकता है, किन्तु गीतकार को काफी संवेदनशील होकर संकेत-चिन्हों के माध्यम से भीड़ के अहसास को कहना होगा। वह स्वयं एक इकाई बनकर भी पूरी भीड़ के मनोविज्ञान को निरवैयक्तिक होकर तटस्थ्य पूर्वक कह सकता है। 'कृत्रिम समझौते में बीत रहे दिन' आज की उखड़ी जिन्दगी की सही तस्वीर

पेश करता है। सुबह-शाम, तन-मन और वादे-इरादे के क्रमशः बन्दी होने खपने-कँपने, बिखरने-बदलने की बात जैसे एक समग्र प्रभाव का कथन है और उसके बाद गीतकार ब्यौरे में जाता है। इसी तरह इस गीत के चार टुकड़े में से प्रत्येक का प्रभाव एक समान है। इसमें चरम बिन्दु किसी एक खास टुकड़े के हिस्से में नहीं है। इन टुकड़ों मे क्रमशः दिन की निरर्थकता फीकेपन, अधूरेपन, उदासी की चर्चा है। सब मिलाकर दिन भर की उदासी और अर्थशून्यता की प्रभावान्विति पूरे गीत के माध्यम से सँजोई गई है। दिन की रिक्तता के साथ बोझिल सुबह-शाम, शरीर और मन पर उनके प्रभाव और उसके कारण संवेगों की तब्दीली को भी सामने लाकर एक स्थिति को उसके बाह्य और आन्तरिक स्वरुप की समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। गीत की यह दूसरी तकनीक है कि चरम बिन्दु किसी टुकड़े में न सँजोकर पूरे गीत से प्रभावान्विति को एकोन्मुख किया जाय। इसमें आये हुए उपमान भी अधिकतर प्रस्तुत संदर्भ से ही चुने गये हैं--खाली मेजों सा, अधभरे खातों सा, सूने चौराहे से, टूटी प्याली सा तथा झड़े-झड़े गातों सा। उखड़े आलक्तक को भी प्रस्तुत से ही संदर्भित किया जा सकता है। अब सिर्फ झुकी-झुकी टहनी और उड़े-उड़े पात विशुद्ध अप्रस्तुत ठहरते हैं जो क्रमशः समझौते और उद्भ्रान्ति के संकेतक हैं। उनका उपयोग शुरुआत की पंक्तियों में पृष्ठभूमि के रुप में हुआ है। कुछ दूर से माहौल को देखनेवाला जैसे दूर से उपमान लाकर किसी स्थिति को प्रकट कर रहा हो और उसके बाद तो जैसे वह सह-भोक्ता बन जाता है। चूँकि दिन का खाली और उदास महौल पूरी समग्रता के साथ प्रतिबिम्बित हो रहा है, इसलिए अनुभूति नितान्त विश्वसनीय है। गीतकार ने बतौर हिस्सेदारी के रचनात्मक स्तर पर भी आज की जिन्दगी के यथार्थ को झेला है। आज का हर आदमी जुलूस का एक हिस्सा बन गया है, उसकी चाल खुद की नहीं बल्कि पीछे से एक रेला आया है और वह आगे चलने के लिये मजबूर है। यह उसकी चाल नहीं, मजबूरी है। आदमी विरोधात्मक स्थिति में जी रहा है। एक ओर वह ऊब से भरी हुई भीड़ की जिन्दगी बसर कर रहा है, उसका कोई निजी एहसास नहीं और दूसरी ओर वह खण्ड-खण्ड में बँट कर जी रहा है :

भीड़ों की जिन्दगी साथ लिये ऊब
नंगी खामोशी में चैन गई डूब,
ताख पर धरे पड़े सारे एहसास
खंड-खंड में बँटे आदमी भी खूब।

लेकिन इसके बाद आया हुआ मुहावरा 'अपने ही कंधे पर अपनी लाश लेकर चलना' अत्यधिक घिस जाने के कारण अर्थ-शून्य हो गया है। यह तो ठीक वैसे ही है जैसे उर्दू शायरों का अपनी हड्डी से अपनी ही कब्र खोदना। ऐसे भाषाई प्रयोगों से ही अनुभूति की सत्यता नहीं जाहिर होती। भाषाई अविश्वसनीयता संवेदना की अविश्वसनीयता उधेड़ कर सामने रख देती है।

नवगीतकारों में अधिकांश सारी कुन्ठाओं और संत्रास के बावजूद जीवन के प्रति आस्थावान हैं। शांति सुमन जी ने तो कुन्ठाओं को जीवन के वृहत्तर आयाम की उद्घाटिका तक सिद्ध करना चाहा है। इसलिए सारी रिक्तता ऊब और थकान के बावजूद वे सिर्फ अपने से ही हमेशा जूझने में विश्वास नहीं करतीं। ग्रंथि को खोलकर एक दूसरे से हिलना-मिलना यानी बाँट कर भोगना आदमी और आदमी के बीच सेतु का काम करता है। अन्दर की गांठों ने सेतुओं को खंडित कर दिया है और इनकी पुनररचना किसी अच्छे इंसान की सबसे बड़ी स्पृहा हो सकती है :

अपने से कब तक यों जूझते रहें,
बाँट कर भोगें हम बाँट कर सहें
तुम्हारी सुनें, कुछ अपनी कहें।

शान्ति सुमन ने मुक्त क्षणों के आभोग की जो बात जहाँ-तहाँ कही है, उस पर बहस की काफी गुन्जाइश है। नवगीत के कुछ पक्षधर मुक्त-क्षण की इन बातों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। उनके अनुसार यह रोमानियत है, लेकिन मेरा ख्याल यह है कि यहाँ बहस का मुद्दा अनुभूति की विश्वसनीयता होनी चाहिए। प्रेम एक ऐसा प्रसंग है, जिसके बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं। हर इन्सान में यह किसी न किसी रूप में बराबर रहता है। समय की तब्दीली से इसका स्वरूप बदल सकता है, किन्तु मूल अनुभूति समाप्त नहीं हो सकती है। प्रेम रोमानियत के रूप में हो सकता है और जीवन के अपरिहार्य सन्दर्भ के रूप में भी। नवगीत से मुक्त क्षण के इस व्यापार को काट देने पर नवगीत की अनुभूत्यात्मक विश्वसनीयता संदेहास्पद हो जायेगी। हिन्दी कविता में तो आधुनिक काल में पहली बार किसी नारी के द्वारा मुक्त क्षणों का बेबाक सम्प्रेषण हुआ है। उनमें नारी होने के नाते थोड़ी सी भावुकता शेष है, किन्तु प्रणय-व्यापार के दौरान रोमांच, तन्मयता, व्याकुलता, आभोग आदि को वे बड़ी खूबसूरती से सांकेतिक भाषा में कह जाती हैं :

तन घीरे हुआ कास - वन,
मन सूरजमुखी बन गया।
छवि खिंची दरपनी वक्ष पर,
एक तूफान थमने लगा।
गंध महकी जुही - जंगलों सी,
एक पिघलाव जमने लगा।

छायावादोत्तर प्रेमगीतकारों की लिजलिजी भावुकता ओर इस गीत की संवेदना में यह फर्क है कि इसमें जीवन की सच्चाई है और वहां प्रायः कल्पना टंगी अनुभूति की अविश्वसनीयता ही फरफराती रहती है। चिरपरिचित ऐसे संकेत-चिह्नों को पकड़ा गया है जो हमारे सौन्दर्य-बोध के सुपरिचित मानदण्ड रहे हैं। ये संकेतक अर्थ के साथी होकर भी नये ढंग से व्यवस्थित किये गये हैं। यहाँ आई हुईं संज्ञायें और क्रियायें नये भाषाई अन्दाज का रंग भर रहीं हैं और एक नितान्त विश्वसनीय अनुभूति को सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है। किसी मुक्त क्षण के भोग को तटस्थ्यपूर्वक सन्दर्भित करने की गवाह उसी गीत की ये पंक्तियाँ हैं :

एक बादल बरसता रहा—
और धुलती गई वासना।

प्रतीक्षा एक परम्परा—सिद्ध सन्दर्भ है, जिस पर बहुत कुछ लिखा गया, लेकिन हर आदमी के लिये वह बराबर नया बना रहा। काफी यांत्रिकता के बाबजूद इससे जिन्दगी में कतरा कर निकलना मुश्किल है। आज का गीतकार भी इसे झेलता है, लेकिन परिवेश की रेखाओं से अनुभूति की विश्वसनीयता और नयेपन दोनों को आँक देता है :

खिड़की के पल्ले खुले,
परदे उड़े सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे।

मैं जब मुक्त क्षणों की बात करता हूँ तो शांति सुमन जी के दो गीत विशेष रूप से याद आते हैं—'होने दे ओ रे मितवा, जो जी में है' और 'गरम हथेली और भीगे से तलुवे।' इन गीतों में जीवन का सही एहसास है। रोमानियत इसलिए नहीं है कि आवेग से जन्मी कोरी काल्पनिकता नहीं दिखाई पड़ती।

पहले गीत की भाषा में थोड़ी सौन्दर्यपरक रोमानियत है और वह भी अप्रस्तुत चयन में। 'सोनिल अंजोरिया' और 'गंधिल उसाँस' भाषाई रोमानियत है, किन्तु यह उस परिवेश के एहसास को अधिक जोरदार ढंग से सामने रखता है। विशेषण जरा सूक्ष्म हैं और वे अनुभूति की सच्चाई तक कल्पना के जरिये पहुँचाते हैं। नीचे की चार पंक्तियों में पहली दो के संकेतक—कचनारी मन और अनारी-बेल—कल्पना-सापेक्ष होते हुए भी प्रस्तुत की स्थिति को सही ढंग से सामने रखते हैं, लेकिन नीचे की दो पंक्तियों में एकदम ताजगी के कारण एहसास की सच्चाई है :

खिल - खुला कचनारी मन
दहके अनारों की बेल,
साड़ी की बैंगनी सलवटें—
आँखों की प्यास रही झेल।

दूसरे गीत में एहसास की सच्चाई और लोकगीत का संस्पर्श एक साथ मिल गये हैं। 'पिया चुटकी न काटो' कतिपय सहजता और लयात्मक ढलाव के कारण किसी लोकगीत की पंक्ति मालूम होती है। किन्तु उसके पहले की पंक्ति 'गरम हथेली औ भीगे से तलुवे' संवेदना को एकदम विश्वसनीय बना देती है। चूंकि यह अनुभूति गीतों में अभी तक अनकही कहानी रही है, इसलिए इसमें तरोताजगी है। इसके आगे के टुकड़े में बेरी के डार सी पास-पड़ोसिन और निगोड़ी पुरवैया लोकगीत में इतना घिस-पिट गई है कि संवेदना उनके बहुत ऊपर से गुजर जाती है, लेकिन इसके बाद के टुकड़े की पंक्ति 'बुरा नहीं मानो तो खींचू यह रेह' में मीठी गुदगुदी है। गीत के अन्तिम हिस्से में सोहागिन की तुनक अभिधेय किन्तु साजन की बरजोरी और सजनी की मनुहार व्यंग्य है। गीत के चार छन्दों में से इस आखिरी टुकड़े में आकर अनुभूति का सारा प्रभाव सघन हो गया है :

ये लो चनक गई
तीज चढ़ी चूड़ी,
ओहो, बड़े वैसे तुम
मानो मजबूरी।

'ओ प्रतीक्षित' में मध्यवर्गीय नारी की बेबस और बोझिल जिन्दगी का प्रतिबिम्ब एक गीत में अच्छी तरह से हुआ है—'कोशिया काढ़े दिन बीते।' इसका सौन्दर्य इसलिए और बढ़ जाता है कि स्थिति से जूझती हुई मनस्थिति

का सांकेतिक ब्योरा पूरे गीत में है। 'कोशिया काढ़े दिन बीते, अब तो चूल्हे-चौके की बात' में चूल्हा-चौका पकाने-खाने में सिमटी जिन्दगी और कोशिया थोड़ी सी फुरसत में शिल्प यानि सौन्दर्य-बोध से सम्बन्धित गृहस्थी की ही जकड़बन्दी है। इसी तरह आगे की पंक्तियों में धुआँ और किलक-ठुनक क्रमशः घुटन और अभाव के संकेतक हैं। । परिवेश का वाह्य अभिधेय और अभ्यन्तर व्यंग्य है। आगे की पंक्ति में कोहबर के पुष्परेणु का रीतापन यथार्थ की भूमि पर पहुंचने के बाद पिछली रोमानियत का सच्चा एहसास है :

धुओं से भर जाती घर की छत सुबह-सुबह
किलक और ठुनक से मन की सब बातें कह।
कोहबर के पुष्परेणु रीते—
अब तो बस सब मौके की बात।

सदियों से कैद की जिन्दगी बसर करती हुई भारतीय नारी की तड़पन को भी शांति सुमनजी ने पहली बार लय में सँजोया है :

परदे बीमार और बंद गली दरवाजे,
सीखचों में कैद कोई धूप गई मर लाजे।

बिम्बों के मामले में शांति सुमनजी ज्यादा संवेदनशील हैं। नवइयत की तलाश की अपेक्षा अनुभूत्यात्मक कोमलता पर उनकी दृष्टि अधिक रहती है। किसी रूप की समग्रता अथवा अनुभूति की गहराई को प्रगट करने में उनके बिम्ब खरे उतरते हैं। रूप-चित्र में भी स्थिर और गतिमान, दोनों प्रकार के बिम्ब 'ओ प्रतीक्षित' में आये है। 'कांचों के टुकड़े सा गड़ता अकेलापन' में एकाकीपन की धारदार तेज चमक और दर्द व्यंजित होता है। अलक्ष्य अनुभूति का लक्ष्य प्रस्तुत। यहाँ अप्रस्तुत के जरिये प्रस्तुत का तीखापन उभरा है, तो नीचे की पंक्तियों में केवल भाषा की व्यंजकता बिम्ब के प्रभाव को अच्छी तरह मांज देती है :

अलक भार झुकी-झुकी पलकें शरमीली,
रिसती सी रूप की सुगंध गमगमाती।

पलकों को शरमीली कह कर अन्दर के संवेग और अलक के भार झुकी कह कर उसके वाह्य सौन्दर्य को प्रगट किया गया है। नीचे की पंक्ति में प्रभाव की सूक्ष्मता को व्यंजित करने के लिये भाषा भी सूक्ष्म हो गई है। सब

मिलाकर अन्तर और वाह्य सौन्दर्य ही नही प्रभाव को भी बिना किसी अप्रस्तुत के सहारे केवल भाषाई ताकत से टांक दिया गया है। यहाँ सिर्फ 'अलक' शब्द आपत्तिजनक है। सिर के घुँघराले बालों के लिए अलक प्रायः रूढ़ है। उसमें अन्य अर्थ भरने की गुंजाइश नहीं है। कभी सिर्फ एक विशेषण पर बिम्ब टिक जाता है—'रोएँदार कुहासे से आँखें झपी-झपी' (पृ० ३६)। कुछ नये अप्रस्तुतों के जरिये बिम्बों को उसकी पूरी सार्थकता के साथ प्रगट किया गया है। यहाँ नवइयत की तलाश के लिए भटकाव नहीं, बल्कि परिवेश से वस्तु-चयन के कारण समकालीन जिन्दगी का एहसास है :

धूएँ के छल्लों सा
जीना नाकाम
मकड़ी के जालों सी बिछी हुई उलझनें

बेचैनी, भटकाव, श्मशानी परिवेश और प्राणशून्य आकर्षण को अलग-अलग संकेतकों से प्रगट करके परिवेश की समग्र बेचैनी को नीचे की पंक्तियों में प्रकट किया गया है। अलग-अलग बिम्ब मिलकर परिवेश को उसकी सम्पूर्ण समग्रता में उभार रहे हैं। सिर्फ पहला बिम्ब बहुप्रचलन से घिसा हुआ है, किन्तु नीचे की तीन पंक्तियों में वह भी नये तरीके से प्रयुक्त हुआ है :

बदहवाश भाग रही इच्छाएँ
धूल भरे आँखों के ताल,
नीचे पथराई ढेर सी मछलियाँ
ऊपर खिचे मेहराबी जाल।

सुपरिचित वस्तुओं से बिम्ब की एक अन्य नई व्यवस्था :

मेरे दिन बरगद के—
पास कहीं पोखर,
मरी हुई मछली सी—
अपना सब खोकर।

इसमें केवल वस्तु-संचयन ही नहीं, अनुभूति संगठन भी है। निजी सम्बन्धों में दर्द का तीखा एहसास, एकदम नये बिम्ब से प्रगट हुआ है :

तरबूज की लाल सतह—
काले से दाने,

मेरा सम्मोहित क्षण
यह कैसे जाने।

चाँद के लिए बहुत से उपम न आये हैं और उनमें प्रायः अधिकांश स्त्रीलिंग ही हैं। 'ओ प्रतीक्षित' की कुछ पंक्तियों में उसका शरमीला, किन्तु नए एहसास से भरा सुन्दर और अनुभूति-प्राण बिम्ब-विधान हुआ है। एक ओर चाँद का स्वरूप और दूसरी ओर मानव का अनुभूति-गुंजित परिवेश :

लुकता-छिपता चाँद
जैसे नव ब्याहा पाहुन सहम रहा,
पार कर देहरी पहली बार।

शांति सुमन जी ने नारी के इर्द-गिर्द से कुछ सार्थक बिम्बों का चयन किया है, जिससे नवगीत के फलक का विस्तार हुआ है :

देखे-अनदेखे से घूमें—
रीलों वाला मन।

× × ×

सूई की नोंक चुभी जब-जब
लहर गया रेशमी रूमाल

शहरी जिन्दगी के एहसास से बोझिल शांति सुमनजी ने देहाती आंचल से भी एकाध बिम्ब का आनयन किया है :

ठहराई स्मृतियाँ रेख यों टिका,
उड़ती अँधेरे बैलगाड़ी की धूल।

कुछ बिम्ब पुराने होते हुए भी नई व्यवस्था में है :

सुधियों की भँवर गई डोल,
हाथों में काँपता गुलाब रह गया।

शांति सुमनजी के कुछ ऐसे भी बिम्ब हैं जो वर्ण अथवा धर्म की असंगति के कारण लुंज-पुंज दिखाई पड़ते हैं

छितराई अंबर में बादल की धूल—
गिरा हुआ फूल जैसे पूजा की थाली का।

× × ×

आंचल पसार चली आती है रात—
चंदा लजाता जैसे बलम किसी दासी का।

'ओ प्रतीक्षित' के शब्द-गठन और लय-संयोजन पर थोड़ी सी मेरी विमति है। गीत से 'गीतिल' (पृ० ५), ओस से 'ओसीली' (पृ० ५३), कुहरे से कुहरीला' (पृ० ५६), गंध से 'गंधिल' (पृ० ६२), सपन से 'सपनीली, (पृ० ६५), विकारी रूपों को एक सीमा तक ही स्वीकार किया जा सकता है। शुरू का क्रियारूप 'शुरूआये' आदि कुछ विशेष अर्थ दे तो ठीक अन्यथा बन्ध्या प्रयोग से क्या लाभ। इसी तरह गंध का बहुवचन 'गंधों' (पृ० ६८) और लाल का विकारी रूप ललाएँगी' (पृ० ७२) का तर्क सम्मत जबाब नहीं है। खुशफहमी (पृ० ४६), 'यातयाम' (पृ० २०) जैसे प्रयोग भी बेमानी है। 'अथोड़' पृ० (२४) शब्द थोड़े से अधिक का ही व्यंजक है, बहुत अधिक का नहीं। इसी तरह 'आधे अधूरे' (पृ० ३४) और 'ओ पिया' (पृ० ५७) को क्रमशः मोहन राकेश और अज्ञेय ने ऐसा रगेदा कि एक मुहावरा तथा दूसरा सार्वजनिक लटकन बन गया। मछेरों का जाल फेंकना, एक बूँद का उछलना और सूरज का चक्कर खाना भी अब बेमानी है। दूसरे की उधार ली हुई भाषा अपने एहसाह को अच्छी तरह नहीं कह सकती। इससे भाषा की विश्वसनीयता उठ जाती है और अनुभूत्यात्मक सच्चाई पर पेबन्द लग जाती है। वैसे संग्रह की भाषा में नयापन न होते हुए भी सहजता का आकर्षण है। हमारे बहुत करीब की भाषा नितान्त विश्वसनीय होती है। गीत-योजना में शांति सुमनजी अधिकतर लयात्मक-संयोजन पर निर्भर रहती हैं। लोकधुनों को भी उन्होंने जब-तब अपनाया है। सामान्यतया लय में अनाहत प्रवाह होता है किन्तु एकाध जगह लय टूट सी जाती है। इन एकाध मामूली सी खामियों के अलावा 'ओ प्रतीक्षित' नवगीत विधा में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उसमें समसामयिक जीवन की हिस्सेदारी रचनात्मक धरातल पर बराबर दिखाई पड़ती है। इसके अलावा मध्यवर्ग की नारी की तड़पती, ऊबभरी, मुस्कुराती और दाम्पत्य जीवन की आड़ी तिरछी रेखाओं के घेरे में बन्द जिन्दगी का यह सच्चा एहसास है।

□